सिख परम्परा, उनकी समस्या और समाधान

डॉ. हरवंशलाल ओबराय

सम्पादक एवं संकलनकर्ता
स्वामी संवित् सुबोधगिरि

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

खण्ड 1 : राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास
खण्ड 2 : महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व
खण्ड 3 : धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान
खण्ड 4 : वेदान्त दर्शन की वैज्ञानिकता
खण्ड 5 : गीता दर्शन की सार्वभौमिकता

प्रकाशक एवं वितरक :
स्वामी संवित् सुबोधगिरि
श्री नृसिंह भवन
संन्यास आश्रम,
भक्तानन्द शिव मन्दिर
भीनासर 334403
बीकानेर (राजस्थान)
मो. : 09413769139

अन्य पुस्तक प्राप्ति स्थान :

- श्री सुशील कुमार ताम्बी
  प्रज्ञा साधना आध्यात्मिक पुस्तक केन्द्र
  A/3 आर्य नगर
  एन.के. पब्लिक स्कूल के पास
  मुरलीपुरा, जयपुर 302039
  फोन : 0141-2233765 मो. : 09829547773
- **ज्ञान गंगा प्रकाशन**
  पाथेय भवन,
  बी-19, न्यू कॉलोनी, जयपुर
  दूरभाष : 0141-2371563
- **अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना**
  आप्टे भवन, केशव कुंज, झण्डेवाला
  नई दिल्ली 110055
  फोन : 011-23675667
- **हिन्दू राइटर्स फोरम**
  129-बी, डी.डी.ए. फ्लैट्स (एम.आई.जी.)
  राजौरी गार्डन, नई दिल्ली 110027
- **जागृति प्रकाशन**
  श्री कृष्णानन्द सागर
  एफ-109, सेक्टर-27, नोएडा 201301
  फोन : 0120-2538101 मो. : 09871143768

ISBN 978-93-84133-08-5

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण : 2015 ई.

प्रतियां : 1100

मूल्य : पचास रुपये मात्र

आवरण : गौरीशंकर आचार्य

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स, विनायक शिखर
शिवबाड़ी रोड, बीकानेर 334003

Sikh Parampara Unki Samasya Aur Samadhan (Hindi)
Edited by Swami Samvit Subodhgiri ₹ 50

आशीर्वचन

भारतीय संस्कृति का आधार सनातन धर्म है। सनातन का अर्थ है जो आदि और अन्त रहित है। अतः यह धर्म अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक रहेगा। इस धर्म को अपनाने वाले को भी यह धर्म 'सनातन' की प्राप्ति करा देता है। ब्रह्म को ही वेदों में सत्य या सनातन कहा है। सनातन धर्म पर आधारित होने के कारण भारतीय संस्कृति भी सनातन संस्कृति है। भारतीय संस्कृति ओंकार-मूलक है। ओंकार ही ब्रह्म है, ओंकार ही आत्मा है, ओंकार ही जगत् है, ओंकार से भिन्न और परे किसी अन्य की सत्ता ही नहीं है। ओंकार से ही सारे वेद प्रकट हुए हैं। वेद अपौरुषेय हैं, अनन्त हैं, सनातन हैं। संस्कृति का विस्तार वेदों में प्रतिपादित कर्मकाण्ड, उपासना-काण्ड और ज्ञानकाण्ड के अनुसार हुआ। संस्कृति के संवाहक ऋषियों ने मानव मात्र के अभ्युदय और निःश्रेयस को प्रदान करने वाले जीवन-दर्शन और जीवन-विज्ञान को सारे विश्व में फैलाया। भारत-भूमि को इस संस्कृति-प्राकट्य और प्रसार के मूल-स्थान होने का गौरव प्राप्त है। इस संस्कृति-वीणा की दिव्य झंकार तो 14 भुवनों के आरपार होकर वैकुण्ठ, कैलास और मणिपूर व्यापिनी है।

अवतारों की लीलास्थली एवं ऋषियों की तपोभूमि भारत में संस्कृति का प्रवाह कभी अवरुद्ध नहीं हुआ। संकट के समय में जब इसका बाह्य रूप प्रक्षीण हुआ तब भी यह अन्तःपयस्विनी होकर सतत प्रवाहित होती रही।

प्रस्तुत ग्रंथ में संस्कृति की इस अमरता और इसके वैश्विक रूप का सम्यक् दर्शन होता है। प्रखर मनीषी और उद्भट विद्वान् प्रो. हरवंशलाल ओबराय एक चल-विश्वविद्यालय व चल-पुस्तकालय होने के साथ-साथ ब्रह्मविद्या के श्रेष्ठ विद्यार्थी भी थे। एक स्थान पर स्थिर होकर लेखन कार्य में संलग्न रहना उनके स्वभाव में नहीं था। उन्होंने स्वयं लिखने से अधिक लिखवाया और उससे भी अधिक प्रवचनों में अभिव्यक्त किया। उनके द्वारा अभिव्यक्त बहुमूल्य सामग्री को स्वामी श्री सुबोधगिरिजी ने वर्षों तक संभाल कर रखा। संन्यास के पूर्व वे अनेक वर्षों तक प्रो. ओबराय के शिष्य बन कर रहे। उन्होंने सत्-शिष्य बन कर प्रो. ओबराय की सेवा की, उपासना की और उनसे अध्यात्म, धर्म, संस्कृति, इतिहास आदि अनेक विषयों का प्रामाणिक एवं दुर्लभ ज्ञान प्राप्त किया। प्रो. ओबराय ने अपनी प्रखर प्रतिभा, अनुसंधानात्मक वृत्ति तथा संश्लेषक व विश्लेषक प्रज्ञा द्वारा भारतीय संस्कृति के अनेक अज्ञात पक्षों का पता लगाया था। उनकी बहुत कुछ सामग्री तो उनके पश्चात् बचाई नहीं जा सकी। किन्तु सुबोधगिरिजी ने अपने पास की सामग्री को तथा कई अन्य स्रोतों से भी उनकी रचनाओं को एकत्र करके उन्हें लोक कल्याण के लिये प्रकाशित करने के संकल्प को जीवित रखा। प्रभुकृपा से अब उनका संकल्प पूर्ण होने जा रहा है। यह प्रकाशन प्रो. ओबराय के प्रति उनकी सच्ची श्रद्धांजलि है। प्रभु से प्रार्थना है कि वे निरन्तर ज्ञानार्जन करते हुए ब्रह्मविद्या के आलोक को प्राप्त करें।

—परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरि

आओ! शिष्य बनें

भारत विश्वगुरु था। इसकी परा-अपरा विद्या को प्राप्त करने धरती के कोने-कोने से जिज्ञासु-मुमुक्षु इस पुण्य-भूमि में शिष्य-भाव से आते थे। इसी भूमि से ज्ञान-दीप ले त्यागी-तपस्वी-विद्वान् साधक, आचार्य विदेशों में जाते और ज्ञान-प्रकाश से वहाँ की संस्कृति के अँधियारे को दूर करते थे। इन ज्ञान-वितरकों के प्रेरक ऋषि थे, आत्मज्ञान ही इनका बल था, प्रभुप्रेम ही इनकी गति थी।

कालान्तर में भीषण युद्ध हुए—गृहयुद्ध भी व बाह्य आक्रमण भी। फलतः भारत की क्षात्र-शक्ति निर्बल हुई, बुद्धि-शक्ति अरक्षित हुई, अर्थ-तन्त्र ध्वस्त हुआ, लोक-जीवन दमित व अस्त-व्यस्त हुआ। ऐसे जर्जरित राष्ट्र का परतन्त्र होना स्वाभाविक था। भारत का स्थूल कलेवर पराजित हुआ था, मन व आत्मा नहीं। इसके स्थूल कलेवर में भी स्वातन्त्र्य-रक्त अल्पांश में प्रवाहित होता रहा था। सत्संग-स्वाध्याय, पर्व-परिवार, तीर्थ-तीर्थाटन आदि सांस्कृतिक संस्थानों द्वारा यह भारतीय संस्कृति प्राणन करती रही, मरी नहीं। किन्तु भीषण अत्याचारों के कारण इसका आत्मगीत दिशा-दिशा में मुखरित नहीं हुआ। कुछेक विभूतियों ने आविर्भूत होकर इसके आत्म-दर्शन का उद्घोष किया, किन्तु उसका संचार इसके सर्वांग में न हो सका। दीर्घ परतन्त्रता के पश्चात् प्राप्त तथाकथित स्वतन्त्रता भी दिखावे की सिद्ध हुई। इसकी आत्मा अभी भी मुक्त साँसों के लिये छटपटाती है। इसके पूत अभी भी याचक हैं, उच्छिष्टभोजी हैं, अन्धानुकरण में रत हैं। इस आन्तरिक परतन्त्रता से मुक्त होना ही होगा, क्योंकि इस संस्कृति का स्वधर्म ही आत्मोन्मुखी है, ईश्वरोन्मुखी है। इसके स्वभाव में चारों वर्णों का सामरस्य है। अपने स्वभाव की विरुद्ध दिशा में बहना इसके लिये भयावह है। किन्तु यह अपनी स्वदिशा में गतिमान कैसे हो? कैसे यह अपने विश्वगुरु पद को प्राप्त करे?

यह संस्कृति अपने गौरवपूर्ण पद को प्राप्त कर सके—इसके लिये प्रत्येक भारतीय को अपने स्वधर्म को पहचानना होगा। उसको लेकर उसे अपनी संस्कृति से एक लय में रहते हुए स्वकर्म करना होगा। उस स्वकर्म से उसे जगद्गुरु की शिष्यभाव से अर्चना करनी होगी। यों शिष्यभाव की अनगिन धाराएँ मिल कर एक प्रबल पवित्र प्रवाह बनेगा और तब फिर यह संस्कृति विश्वगुरु रूपिणी गंगा होगी, सृष्टि-मूल के गोमुख को पूर्णानन्द उदधि से जोड़ने वाली, मानव मात्र को तारने वाली भागीरथी होगी।

आओ! शिष्य बनें।

स्वात्म-संस्कृति के उन्नयन के लिये भगीरथ-प्रयास करें।

—परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज

प्रकाशकीय

जब मुगल महीपों के काले-काले बादल भारताकाश में छायें हुए थे और चतुर्दिक दुःख, दास्य, दैन्य, दौर्बल्य की विकराल रात्रि का साम्राज्य था उस समय जाति को संकट सागर से उबारने के लिए जिन महान् विभूतियों का आविर्भाव हुआ उनमें सिख गुरुओं का योगदान विशेष महत्त्व का है। ये सभी हिन्दू धर्म के अभिन्न अंग थे। ये सभी हिन्दू धर्म की वीर भुजा के रूप में प्रत्येक हिन्दू परिवार ने अपना एक पुत्र देकर हिन्दू धर्म का रक्षात्मक मोर्चा निर्माण किया था। पर अंग्रेजी काल में फूट डालो शासन करो नीति के तहत अंग्रेजों की कूटनीति के शिकार होकर अलगाव के भाव को प्रश्रय मिला। स्वराज्य के पश्चात् इस अलगाव को विराम चिह्न मिलना चाहिए था। पर दुर्भाग्य से देश के बंटवारे और स्वाधीनता के बाद भी जिस प्रकार मुस्लिम तोषण, ईसाई, तोषण चला वैसे ही सिखों का भी तोषण का क्रम जारी रहा फलस्वरूप स्वाधीन भारत में भी पंजाब की समस्या उठ खड़ी हुई। और आज भी अन्तर्धारा के रूप में जारी है जिसे स्वस्थ, सबल, संबद्ध, अखण्ड भारत को बनाने के लिए इसे दूर करने की आवश्यकता है। इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए यह पुस्तिका है। इसमें डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम खण्ड से सामग्री संकलित है। परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराजजी के आशीर्वाद से प्रकाशित हो रही है। हमेशा की तरह सांखला प्रिंटर्स ने पूर्ण सहयोग करते हुए व श्रेष्ठ सुझाव देकर तत्परता से मुद्रण कार्य को सुन्दरता से सम्पन्न किया। उनके प्रति विशेष आभार है।

शिवाकांक्षी

—स्वामी संवित् सुबोधगिरि
सम्पादक व संकलनकर्ता
मो. 09413769139

अनुक्रम

1.	जब नानक ने भारत की दुर्दशा पर आंसू बहाए	7
2.	बगदाद में गुरु नानक द्वारा सांस्कृतिक दिग्विजय	11
3.	गुरु नानकदेव बगदाद में	14
4.	गुरुनानक देव का रहस्यवाद	17
5.	रहस्यवादी संत नानक	20
6.	गुरुनानक : आध्यात्मिक जागरण के अग्रदूत	25
7.	गुरुवाणी में कृष्ण चरित्र	29
8.	पंजाब सरकार द्वारा नानक निन्दक इतिहासकारों का सम्मान	36
9.	राणा प्रताप को नैतिक बल प्रदान करने वाले सन्त श्रीचन्द्र	38
10.	आत्मा के अमरगायक गुरु अर्जुनदेव	39
11.	ब्रह्म संगीत के अमरगायक गुरु तेगबहादुर	43
12.	दशमेश गुरु का अलौकिक भक्ति काव्य	47
13.	अमर बलिदानी बन्दा वैरागी	52
14.	गो-ब्राह्मण व हिन्दू-धर्म के रक्षक : पंजाब के कोहेनूर—किरीट नृपति महाराजा रणजीतसिंह	56
15.	राम प्यारे और सरदार प्रतापसिंह	62
16.	राष्ट्रपति चुनाव हेतु विचारपूर्ण चेतावनी राष्ट्र की अन्तरात्मा की गुहार	63
17.	पंजाब समस्या—निदान और समाधान	67
	परिशिष्ट	
18.	भारत की सांस्कृतिक एकता	79

जब नानक ने भारत की दुर्दशा पर आंसू बहाए

प्रायः मुगल काल को मुसलमानी राज्य का स्वर्ण काल माना जाता है। किन्तु भारत के निर्लिप्त सन्तों ने उसका जो चित्र प्रस्तुत किया है, उसका दर्शन कर हृदय दहल उठता है। उन सन्तों को किसी से ईर्ष्या-द्वेष नहीं था। अतः उन ब्रह्मज्ञानी सन्तों-महात्माओं की साक्षी सभी अन्य तथाकथित इतिहासों के प्रमाण से भी अधिक प्रामाणिक है। वास्तव में देखने की आंख उन्हें ही मिली है जो तथ्यों को देख कर उनका निर्भीकता से वर्णन कर सकते हैं। वे सच्चे साक्षी (आंख वाले) माने जा सकते हैं।

मध्यकाल में जाति को संकट सागर से उबारने के लिए जिन महान् विभूतियों का आविर्भाव हुआ उनमें पुण्यश्लोक गुरु नानकदेव का नाम सर्वाधिक पूज्य नामावली में अर्चना करने योग्य है। पंजाब वेदों, उपनिषदों एवं गीता की धरती है। उत्थान एवं पतन के भीषण भाग्यचक्र के पश्चात् पुनः वेद एवं गीता की उस धरती पर वेद के शाश्वत संदेश को लोकभाषा में गाने हेतु वेदी कुल में ही एक महान् संत का आविर्भाव हुआ। वह धरती उन पुण्यश्लोक संत गुरुनानक के चरणों को चूम कर पुनः धन्य हो उठी।

वेदी कुल

पंजाब का वेदी वंश भगवान् रामचन्द्रजी महाराज की परम्परा में आने वाले सूर्यवंशी क्षत्रियों का ही एक कुल था। गुरु नानकदेवजी के सुपुत्र बाबा श्रीचन्दजी जब अकबर के विरुद्ध 25 वर्षों तक संघर्ष करने वाले वनवासी राणाप्रताप से मिलने मेवाड़ में गए तो महाराणा प्रताप का नैतिक बल बढ़ाते हुए उन्होंने प्रताप का प्रेम से आलिंगन किया तथा बताया कि हम दोनों रघुकुल गौरव रामचन्द्र महाराज की संतति होने के कारण भाई-भाई हैं। उन्होंने वंश का संक्षिप्त इतिहास भी बताया। जब लव और कुश की सन्तानों को किसी राजनीतिक उथल-पुथल में लाहौर (लवपुर) त्यागना पड़ा तो एक शाखा नेपाल चली गई जो आज तक वहाँ राज करती है। दूसरी शाखा राजस्थान में चली गई और राज करने लगी। उन्हीं सूर्यवंशियों की परम्परा में बप्पा रावल, राणा सांगा, राणा प्रताप इत्यादि हुए थे।

इन्हीं सूर्यवंशी क्षत्रियों की एक तीसरी शाखा काशी की ओर चली गई तथा वहाँ वेद शास्त्र इत्यादि का ज्ञान प्राप्त कर वेदी कहलाई। उसी वेदी कुल में ही गुरु नानक देवजी का जन्म हुआ था।

कार्तिक शुक्ल एकादशी से पूर्णिमा तक काम, क्रोधादि पांच शत्रुओं के नाश के लिए व्रत धारण किया जाता है। इन्हीं दिनों भीष्म पितामह ने शरशय्या से धर्मोपदेश दिया था। भगवान् शंकर ने त्रिपुरासुर का वध किया था और इसी दिन पृथ्वी के नेत्र पुष्करराज में महान् मेला लगता है—इत्यादि अनेक विशेषताओं के साथ इसका सम्बन्ध है।

उक्त घटनाओं से इस आश्रम का सम्बन्ध होने से आश्रम की तथा इसकी महत्ता और भी विकसित होकर भारतीय जनता को त्याग, तपस्या, सेवा, धर्म, अहिंसा तथा योगविद्या का संदेश दे रही है।

देश का राजनीतिक चित्र

गुरु नानक एक महान् संत थे। उनका प्रत्यक्ष की राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं था। उनके अपने दो शिष्यों—बाला एवं मरदाना में से एक मुसलमान था। उनकी अपनी ही प्रसिद्ध उक्ति है।

प्रथमहिं अल्ला नूर उपाया, कुदरत दे सब बन्दे।
एक नूर ते सब जग उपजया, कौन भले कौन मन्दे।

इसलिए ऐसे महान् सन्त का किसी से कोई द्वेष नहीं हो सकता। पर उस युग में कुछ ऐसी भीषण राजनीतिक आपदाएं आईं जिन को ब्रह्मज्ञानी गुरु नानक भी आंख से ओझल नहीं कर सके। वे स्वयं कहते हैं—

कलि काती राजे कसाई, धरम पंख कर उडरिया।
कूड अमावस सच्च चन्द्रमा, दीसे नांहि के चढ़िया।।

अर्थात् कलियुग का यह काल छुरे के समान तीक्ष्ण है, राजा कसाई बन गए हैं, धर्म पंख लगा कर उड़ गया है अर्थात् सब ओर अधर्म का ही बोल-बाला है। झूठ की काली अमावस्या की रात है। जिसमें सचाई का चन्द्रमा कहीं भी उदित दिखाई नहीं देता।

हऊ भालि बिकनी होई, अन्धेरे राह न कोई।
बिच हउमैं दुःख रोई, कहू नानक किस विध गति होई।।

गुरु नानक कहते हैं, मैंने बहुत ढूंढ़ा, खोजा किन्तु सब तरफ पाप का अन्धेरा छाया हुआ है, उसमें कोई धर्म की राह दिखाई नहीं देती। अहंकार में सारा जग दुःख पा रहा है। हाय, इस संकट से मुक्ति कैसे होगी?

यह बाबर के आक्रमण काल का चित्र है—

पाप की जंझ ले काबलो धाया, जोरी मंगै दान वे लालो।
सरम धरम दोए छप्प खलोए, कूड फिरै परधान वे लालो।।

वह क्रूर आक्रमणकारी बाबर अपने साथ पाप की सेना लेकर काबुल से भारत पर चढ़ आया। वह बलात्कार से धन-सम्पत्ति मांगता है। शर्म (लोक-लज्जा) और धर्म, दोनों भाग कर छिप गए हैं। अर्थात् उस अत्याचारी के सामने शर्म और धर्म को भी शर्म आती है। सब तरफ झूठ एवं पाप ही प्रधान है।

गुरु नानक के थोड़े काल बाद गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा था—'नृप पाप परायण धर्म नहीं, करि दण्ड विडम्ब प्रजा नितहिं।' गुरु नानक ने मुगल राजाओं को कसाई कहा तो तुलसी ने उन्हें चोर कहा—

वेद धर्म दूरि गये। भूमि भूप चोर भये।

गुरु ने जनता की दुरवस्था का चित्र बड़ा मार्मिक खींचा है—

राजे शींह, मुकद्दम कुत्ते। जाए जगाइन बैठे सुत्ते।

सोई हुई या निश्‍चिंत बैठी हुई निरीह, निरपराध जनता पर मुगल राजे भूखे शेर के समान टूट पड़ते थे और उनके मुकद्दम शिकारी कुत्तों के समान शिकार में उनकी मदद करते थे।

नारी की बड़ी दुर्दशा की गई—

जिन सिर सोहन पट्टियां, मांगी पाए सिन्धूर,
से सिर काती मुन्नियन, गल विच आवे धूड़।

जिन भारतीय महिलाओं (हमारी माँ-बहिनों) के सिर में सुन्दर बालों की पट्टियाँ शोभा पाती थीं और उनकी मांग में सौभाग्य सूचक सिन्दूर शोभित होता था, उन्हीं देवियों के शीशों को कृपाण की धार से मूंड डाला गया है तथा उनके गले में धूल झोंक दी गई है।

यह रक्त के आंसू लाने वाला चित्र और भी कितना भयंकर है—

दूतां नूं फरमाया, लै चलै पत गंवाए,
बाबर वाणी फिर गई, कोयर न रोटी खाए।

भारत में मुगलों के अत्याचारी शासन के मूल संस्थापक नर-पिशाच बाबर ने अपने दूतों को कहा कि इन नारियों की पत छीन कर इन का सौभाग्य लूट कर ले जाओ। उस बाबर ने ऐसी घोषणा कर दी। तब किसी कुंवर (राजकुमार) को रोटी नसीब नहीं होती थी।

मुक्ति की आशा

देश का यह चित्र देख कर गुरु नानक रो उठे। पर वे निराश नहीं हुए। उन्हें अपनी महान् आत्मा तथा देश की आत्मा का बड़ा विश्वास था। उसी अदम्य आत्म विश्वास के भरोसे वे निहत्थे संत ही ललकार उठे——

कीड़ा थाम देवे पातशाही।
लश्कर करे स्वाह।

एक तुच्छ से तुच्छ बालक भी एक पूरी बादशाही को थाम सकता है और सारे लश्कर को स्वाह कर सकता है! इससे दुर्बल से दुर्बल व्यक्ति का भी छिपा हुआ आत्मबल जाग सकता है। जातियाँ इसी आत्म विश्वास के सहारे जीवित रहती हैं। दशम गुरु गोविन्दसिंह ने भी इसी आत्म विश्वास के सहारे गर्जना की थी——

चिड़ियों से मैं बाज मराऊं,
सवा लाख से एक लड़ाऊं,
तब गुरु गोविन्दसिंह कहाऊं।

गुरु नानक द्वारा प्रदान किए गए नैतिक बल एवं गुरु गोविन्दसिंह द्वारा जाति को धर्म युद्ध के लिए प्रदान की गई चमचमाती खड्ग के संयुक्त सामर्थ्य से ही भीषण अत्याचार का हृदय विदारक चित्र बदला जा सकता है।

15 नवम्बर 1959
'मिलाप' में प्रकाशित

हिन्दू कौन?

केवल तभी तुम वास्तव में हिन्दू कहलाने योग्य होगे जब 'हिन्दू' शब्द को सुनते ही तुम्हारे अन्दर बिजली दौड़ने लग जायेगी। केवल तभी तुम सच्चे हिन्दू कहलाओगे, जब तुम किसी भी प्रान्त के कोई भी भाषा बोलने वाले प्रत्येक हिन्दू-संज्ञक व्यक्ति को एकदम अपना सगा और स्नेही समझने लगोगे। केवल तभी तुम सच्चे हिन्दू माने जाओगे जब किसी भी हिन्दू कहलाने वाले का दुःख तुम्हारे हृदय में तीर की तरह आकर चुभेगा मानो तुम्हारा अपना ही लड़का विपत्ति में पड़ गया हो, केवल तभी तुम यथार्थतः 'हिन्दू' नाम के योग्य होगे, जब तुम उनके किये समस्त अत्याचार और उत्पीड़न सहने के लिये तैयार रहोगे।

——स्वामी विवेकानन्द

बगदाद में गुरु नानक द्वारा सांस्कृतिक दिग्विजय

गुरु नानकदेवजी उसी सूर्यवंशी क्षत्रियों के वंश में प्रकट हुए थे जिसमें हरिश्चन्द्र, दिलीप, महाराजा रघु तथा भगवान् श्री रामचन्द्र प्रकट हुए थे। जिस प्रकार महाराजा रघु ने अपने पराक्रम से एक महान् दिग्विजय की। उसी प्रकार गुरु नानकदेवजी ने अपने ज्ञान एवं भक्ति के अमृत से चारों दिशाओं में विजय प्राप्त की। अपनी चार उदासियों (यात्राओं) में उन्होंने एशिया के अनेक देशों में दिग्विजय-यात्रा की। उत्तर में वह तिब्बत, सिक्यांग, ताशकंद, खोकंद, कैलास मानसरोवर तक गए। दक्षिण में वह श्रीलंका तक गए। पूर्व में वह रंगून, हांगकांग, चीन, जापान तक गए। पश्चिम में वह अदन, सना, यमन, मक्का, जद्दा, मदीना, जार्डन, दमिश्क, सीरिया, इराक, ईरान, ख्वारिज्म, बुखारा, समरकंद, काबुल इत्यादि में हरिनाम रसामृत बांटते रहे।

बगदाद (इराक की राजधानी) में गुरु नानकदेव का 817 हिजरी का स्मारक लेखक ने देखा है। जिस पर पुरानी तुर्की मिश्रित अरबी भाषा में एक शिलालेख इस प्रकार है—

कोरद मुराद एलदी,
हजरत रबे मजीद,
बाबा नानक फकीर औलिया,
कि इमारत जदीद।
यलयदा मिला दायद,
व बकल्दी कि तारीखन,
यायदी सवाबे इजराईल,
अब मुरीदे सईद।। (सन् 816)

शिलालेख का भावार्थ इस प्रकार है—

इराक के राजकुमार मुराद ने सन् 817 हिजरी में हजरत रबे मजीद (पवित्र महान् प्रभु) बाबा नानक फकीर ओलिया (सर्वज्ञानी) की उस पुरानी इमारत को

(जहां गुरु नानक ने राजकुमार बहलोल को उपदेश दिया था) स्वयं नया बनवा दिया ताकि इतिहास की याद बनी रहे तथा गुरु नानक के विशेष शिष्य को ईश्वरीय पुण्य लाभ हो सके।

स्वामी आनंदाचार्य (जो नार्वे में बस गए थे) ने भी अपनी पुस्तक Snow Birds (हिम कपोत) में लिखा है कि उन्होंने बगदाद के तनिक बाहर सन् 812 हिजरी का एक शिलालेख अरबी भाषा में देखा। जिसका हिन्दी पद्यानुवाद मैंने इस प्रकार किया है—

इसी स्थल पुनीत पर हिन्दू गुरु नानक ने,
उद्‌बोधन किया, शिष्य फकीर बहलोल को,
विगत षष्ट वर्षों में जब से गुरु नानक जी,
ईरान को छोड़ निज देश को पधारे हैं।
बहलोल की आत्मा गुरुवाणी पर लीन है
जैसे भ्रमर उषा में खिले मधु पाटल पर
मधुर मधु संचय में रहता तल्लीन है
जैसे जीवन जल हेतु व्यग्र कोई मीन है,
बहलोल की आत्मा गुरुवाणी पर लीन है।।

बगदाद में गुरु नानकदेव की सहज स्मृति को पुष्पांजलि चढ़ाते हुए नार्वे में बसे हुए भारतीय संन्यासी स्वामी आनंदाचार्य ने जो काव्योद्‌गार प्रकट किए, उस आंग्ल कविता का स्वरचित हिन्दी पद्यानुवाद गाकर मेरा रोम-रोम गुरु नानकदेव के प्रति कृतज्ञता के भावों से पुलकायमान हो उठता है—

इसी शिलाखण्ड पर बैठ आप गुरुवर ने
भ्रातृ प्रेम तथा पावन ज्योति संदेश दिया
हे गुरु नानक! हे भारत के दिव्य दूत,
ज्योति पुरुषों के ताज, हे सन्त शिरोमणि,
सप्त सिन्धु उद्‌गम से कौन दिव्य गीत लाए
ईरान के जनगण की आत्मा भी धन्य हुई।
हिमालय की शांत, एकांत वन गुफाओं से
कौन दिव्य शांति का पुण्य संदेश लाए,
बगदाद के द्राक्षा तथा पाटल निकुंजों में
बद्रीनाथ के हिम धवल पुण्यमय शिखरों से
विश्व पालनकारी कौन ज्योति लाए थे तुम

जिससे आपके ईरानवासी शिष्यवर,
बहलोल के हृदय में प्रकाश चमचमाया था।
इसी स्थल पुनीत पर हिन्दू गुरु नानक ने
उद्बोधन किया शिष्य फकीर बहलोल को
विगत षष्ट वर्षों में जब से गुरु नानक जी
ईरान को छोड़ निज देश को पधारे हैं।
बहलोल की आत्मा गुरुवाणी पर लीन है।
जैसे भ्रमर उषा में खिले मधु-पाटल पर
मधुर मधु संचय में रहता तल्लीन है।
अंकित वर्ष—812 हिजरी

गुरु नानक की यात्रा का वर्ष : 812-60-852 हिजरी : (1520 सन्)

Swami Anandacharya, now said to be settled in Norway, in his work, entitled 'Snow Birds' records that, during his travels, he found an inscription, dated the year 812 Hejri, in the outskirts of Baghdad, in the Arabic Language which translated, read this :

"Here spoke the Hindu Guru Nanak to Fakir Bahlol, and, for these sixty winters, since the Guru left Iran, the soul of Bahlol has rested on Master's word, like a bee poised on a dawn—lit honey-rose."

-Divine Master P. 153

(Bahlol= Sajjadanashin of Bahlol)

मुझे वास्तविक शिकायत यह है कि राष्ट्रवादी मुसलमानों के प्रति ना केवल कांग्रेस अपितु महात्मा गांधी भी उदासीन रहे। उन्होंने जिन्ना एवं उनके साम्प्रदायिक अनुयायिओं को ही महत्त्व दिया। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि उन्होंने हमारा समर्थन किया होता तो हम जिन्ना की हर बात का खण्डन कर देते और विभाजनकारी आन्दोलन के आरम्भ काल में ही पर्याप्त संख्या में मुसलमानों को राष्ट्रवादी बना देते।

—न्यायमूर्ति मोहम्मद करीम छागला

गुरु नानकदेव बगदाद में

बगदाद में अट्ठासी साल तक खिलाफत टिकी। इस कारण मुसलमान के हृदय में बगदाद के लिए एक विशेष प्रकार का आदर है। उस काल में बगदाद इस्लामी शरा (विधान) का प्रसिद्ध केन्द्र था।

गुरु नानकदेव जी बगदाद पहुँचे और उन्होंने शहर के बाहर एक कब्रिस्तान में डेरे लगा दिए। दूसरे दिन ब्राह्ममुहूर्त में उन्होंने ईश्वर की अनन्तता एवं महत्ता के गीत गाने आरंभ कर दिए। भाई मरदाना उनके साथ अपनी मस्ती में रबाब बजाए जा रहा था।

इस्लाम के अनुसार बगदाद में संगीत पर प्रतिबंध था। गुरु नानकदेव जी के संगीत के निम्नलिखित भाव थे—

पातालां पाताल लख आगासां आगास।
ओड़क-ओड़क भाल थके वेद कहन इक बात।
सहस अठारह कहन कतेबा असलू इक धात।
लेखा होय तां लिखिये लेखे होय विनाश।
नानक बड़ा आखिये आपे जानै आप।।

(जपुजी, गुरुग्रंथ, अंक 5)

'लाखों आकाश और लाखों पाताल हैं। अनेकों मनुष्य उन्हें खोज-खोज कर थक गए हैं। किन्तु, किसी ने उनका अन्त नहीं पाया। उनका अन्त कोई कैसे पा सकता है। यह तो अनन्त है और इसका सही ज्ञान उस सर्वशक्तिमान परमात्मा को ही है।

लोगों ने कब्रिस्तान पहुँच कर गुरु नानकदेव से नमाज पढ़ने को कहा। गुरु नानकदेव जी ने कहा कि खुदा का कोई एक पैगम्बर या रसूल नहीं है। लाख आकाश और लाख पाताल सुन कर बगदादवासी अत्यन्त क्रुद्ध हो गए। खलीफा ने नानकदेव एवं मरदाना को संगसार कर देने की आज्ञा दी।

कुछ देर बाद खलीफा भी गुरु नानकदेव के पास पहुँचा। उससे ज्ञान चर्चा करते हुए गुरु जी ने समझाया कि हमारी बुद्धि सीमित है। अपनी बुद्धि के अनुसार

हम आकाश, पाताल और ईश्वर की व्याख्या करते हैं। हमें अपने विचारों के विरुद्ध कही हुई बात अखरती है। इस प्रकार हम ज्ञान और बुद्धि को सीमाओं में बांध देते हैं। ईश्वर तो अनन्त और असीमित है। उनकी सीमाओं को बांध देना उनकी अनन्तता को चुनौती देना है।

जहां तक राग और संगीत का प्रश्न है उनके सही अर्थ और प्रयोग न समझने के कारण ही उन्हें हराम कहा जाता रहा है। जिस राग में खुदा की सिफ्त की जाए वह राग हराम कैसे हो सकता है। जिस संगीत से प्रभु भक्ति की प्रेरणा मिले उस संगीत का निषेध करना ईश्वर भक्ति से मुख मोड़ना है। सभी राग और सभी गीत मनुष्य की हीन प्रवृत्तियों को नहीं उभारते। संगीत का यदि ईश्वरभक्ति में व्यवहार किया जाए तो साधारण मनुष्य भी अपने को ईश्वर के समीप ले जा सकता है। राग आत्मा का भोजन है। यदि राग में ईश्वर और ईश्वर की महत्ता का सम्मिश्रण कर दिया जाए तो राग पवित्र और आराध्य हो जाता है।

गुरु मुराद ऐलदी, हजरत रबुल मजीद,
बाबा नानक फकीर औलिया नागह इमारत जदीद,
इमदाद एलब कलदी कि तारीखमह या मदी,
सवाब अजे राईदह अनी मुरीदे सईय।। (927 सन् हिजरी)

हजरत रबुल मजीद बाबा नानक—गुरु नानकदेव जी कुछ काल तक बगदाद में ठहरे। वहां के कई पीर-फकीर इनसे प्रभावित हुए। इनमें से एक पीर दस्तगीर थे। जो इस्लाम के ख्यातिप्राप्त पीर अब्दुल कादिर सेलानी के शाहजादा नशीन थे। उनके अतिरिक्त ऐसा विश्वास किया जाता है कि जिस कब्रिस्तान में गुरु नानकदेव जी ठहरे थे, वहीं पर पीर बहलोल का आश्रम था। पीर बहलोल पर गुरु नानकदेवजी का स्थायी प्रभाव पड़ा। उसने सत्य धर्म की महत्ता को स्वीकार किया और अपनाया। पीर बहलोल का आश्रम वर्तमान बगदाद समारा रेलवे लाइन के निकट शहर से बाहर कब्रिस्तान में था। अभी वहां कुछ कब्रों के मध्य एक चहारदीवारी है। जिसमें तीन खजूर के पेड़ हैं। इसके उत्तरी कोने पर दो कमरे हैं। इनमें से एक कमरे में पीर बहलोल दाना की कब्र है तथा दूसरे कमरे में एक पीठ (प्लेटफॉर्म) के निकट जो दीवार है उस पर अरबी व तुरकी भाषा में एक शिलालेख लगा है। इस शिलालेख के उर्दू वर्णमाला के अक्षरों में प्रो. तेजासिंह एवं गंगा सिंह ने अपने सिक्ख इतिहास (अंग्रेजी के पन्ना 12 पर दिया है) जिसे हम देवनागरी में इस प्रकार लिख सकते हैं—

गुरु मुराद ऐलदी हजरत रबुल मजीद, बाबा नानक फकीर
नागह इमारत जदीदा इमदाद एदब कलदी की

तारीखजह याग दी, सवाब अजराईदह अर्जी मुरीद
सईदह सन् हिजरी।।

इस शिलालेख के अर्थ अनेक विद्वानों ने अनेक ढंग से किए हैं। परन्तु जो अनुवाद अभी सर्वमान्य समझा जा रहा है वह प्रो. तेजासिंह एवं डा. गंगासिंह का है जो इस प्रकार है—'यह भवन दोबारा सात संतों की सहायता से गुरु समान हजरत रबुल मजीद बाबा नानक फकीर ओलिया की याद में बनाया गया। जिससे दया और शांति का झरना बह निकला। सन् 827 हिजरी।'

सन् 827 हिजरी ईस्वी सन् 1520-21 में पड़ता है। हजरत रबुल मजीद बाबा नानक फकीर का अर्थ होता है बाबा नानक जो अकाल पुरुष परमात्मा के समान हैं। इस्लाम में किसी मनुष्य को अकाल-पुरुष (परमात्मा) कहना या किसी की भगवान् के साथ तुलना करना कुफ्र गिना जाता है। गुरु नानकदेव जी के प्रति उपयोग किए गए इन शब्दों से ही हम अन्दाजा लगा सकते हैं कि बगदाद में गुरु नानकदेव जी को कितनी मान्यता मिली।

विश्वास किया जाता है कि गुरु नानक जी के बगदाद प्रवास के समय ही वहां संगीत पर से प्रतिबंध हटा लिया गया। तत्कालीन खलीफा ने गुरु नानकदेव जी से प्रभावित होकर उन्हें एक चोला भेंट किया। जिस पर अरबी भाषा में कुरान शरीफ की आयतें लिखी गई हैं। यह चोला अभी डेहरा बाबा नानक में सुरक्षित है। और पर्व-त्योहारों पर इसके दर्शन यात्रियों को करवाए जाते हैं।

पिछले 40 वर्ष का इतिहास इस बात का गवाह है कि विभाजन ने किसी को फायदा नहीं पहुंचाया। अगर आज भारत अपने मूलरूप में अखण्डित होता तो ना केवल वह दुनिया की सबसे बड़ी ताकत बन सकता था, बल्कि दुनिया में अमन-चैन कायम करने में उसकी खास भूमिका होती।

—जीये सिन्ध के प्रणेता, गुलाम मुरतजा सैयद

गुरुनानक देव का रहस्यवाद

मानवता को सर्वप्रथम ज्ञानालोक प्रदान करने वाले ऋषि-मुनियों की पावन चरण धूलि जिस धरती को पवित्र बनाती रही है उसी पंचनद प्रदेश में मध्यकाल में एक अभिनव ऋषितुल्य लोक शिक्षक का आविर्भाव हुआ। पुण्यश्लोक सन्त कवि गुरु नानक, युगों से वेद की ऋचायें गाने के लिए प्रख्यात परम पवित्र 'वेदी' कुल में जन्म लेकर पुनः इस महादेश के विस्मृत सन्देश को समस्त भूमंडल में गुंजाने के लिए आए थे।

जब मुगल महीपों के काले-काले बादल भारताकाश में छाए हुए थे और चतुर्दिक दुःख, दास्य, दैन्य, दौर्बल्य की विकराल रात्रि का साम्राज्य था, उस समय आशा के क्षितिज में आस्तिकता एवं आकांक्षा की स्वर्णिम रश्मियों को बिखेरते हुए बाल-रवि के समान गुरु नानक देव का उदय हुआ।

जब से मानव ने अपने अज्ञान भरे पृथु नेत्रों को खोलकर सृष्टि को प्रथम बार निहारा है तब से लेकर आज तक एक प्रश्न सदा उसकी बुद्धि को चुनौती देता रहा है। वह प्रश्न है 'क्या इस दृश्यमान नश्वर जगत् के पीछे कोई ऐसी अजर-अमर अविनाशी सत्ता है जिसके बोध में सृष्टि के रहस्य की कुंजी छिपी हुई है?' इस अनादि प्रश्न का उत्तर विश्व के महानतम मनीषियों ने देने का प्रयत्न किया है। भारतीय चिन्तन धारा में समय-समय पर अनेकानेक तत्त्वदर्शियों ने इस एक प्रश्न के अनेक समाधानकारक उत्तर दिए। परन्तु वे अनेक उत्तर मिल कर एक ही सत्य की ओर संकेत कर रहे हैं। अतः इस पहेली का भारतीय उत्तर तत्त्वरूप से एक ही है। उस एक की अर्चना करते हुए नानक देव कहते हैं—

एक ओंकार सतिनामु करता पुरुखु
निरभउ निरवैरु अकाल मूरति
अजूनी सैभं गुरप्रसादि।।

उसी एक ओंकार तत्त्व के विषय में गुरु नानक कहते हैं—

एक ओंकार हमारा खाविंद, जिन हम बनत बनाये।
उसको त्याग अवर को लागे, नानक सो दुःख पाये।

भगवान् शंकराचार्य के 'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या' के समान ही गुरु नानक की घोषणा है—

ज्यों सपना अरु पेखना, ऐसा जग को जान।
इस में कछु सांचो नहीं, नानक बिन भगवान्।।

पर वह अमर तत्त्व है कहाँ? क्या सातवें आसमान पर है? नहीं, वह तो सब सांसों की सांस है, जीव में ही छिपा हुआ है—

घट में बसे सूझे नहीं, लानत ऐसी जिन्द।
नानक या संसार को, भयो मोतिबा बिन्द।।

यह मानव देह भगवान् का मन्दिर है—

काइआ महलु मन्दरू धरू हरि का, तिसु महि राखि जोति अपार।
नानक गुरुमुखि महलि बुलाइऐ, हरि मेले मेलणहार।।

वे पुनः गाते हैं—

मन मन्दरु तनु वेस कलंदरु, घट ही तीरथ नावां।
एक सबदु मेरे प्रानि बसत है, बाहुड़ि जनमन आवां।

माया के आवरण से ही हमारे पृथु नेत्रों को उस परम तत्त्व के दर्शन नहीं होते। इसी कारण हम दुःख भी पाते हैं—

साधो एह जग भरम भुलाना
राम नाम का सिमरन छाड्यो
माया हाथ बिकाना।

जीवन अनेक जन्मों के मलिन संस्कारों से पुनः विषय रूपी विष को ही खाने दौड़ता है—

अन्तर बसे न बाहरि जाई
अमृत छोड़ि काहे विषु खाई।।

पर गुरु नानक तो निरन्तर अपने प्यारे के प्रेम में लीन हैं, वे सच्चिदानंद की लीला के सांझीदार हैं। उनका नशा बड़ा अद्भुत है—

जेते नशे संसार के उतर जाहीं प्रभात
नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात

नानक का तो प्राणाधार ही वही है उसका नाम लेने में ही नानक का जीवन है—

आखां जीवां विसरे मर जावां
सो मैं बिसर न जाई।

विरह

अपने प्राणप्यारे पति का वियोग न सहकर गुरुनानक की आत्मारूपी वधू पुकारती थी—

रंडिया एह न आखियन, जिनके चलन भर्तार।
रंडियां सोई नानका, जिन बिसर्यो करतार।।

वे पुनः विरह की वाणी में पुकारते हैं—

जब लगि दरसु न परसै प्रीतम, तब लगु भूखि पिआसी,
दरसनु देखत ही मन मानिआ, जल रसि कमल विगासी।

गुरु नानक उसी परम ज्योति के द्रष्टा थे जिसके बारे में उनकी साक्षी है—

सब महं ज्योति ज्योति है सोई।
तिसके चानणि सबमहिं चानण होई।।

गुरु नानक एक प्रेमिका के समान अपने सच्चे पति के लिए तरसते हैं—

सभनि धरि सहु बसे सह बिनु घटु न कोई
नानक ते सोहागनी जिन्हा गुरमुखि परगटु होई

चिर वियोग के पश्चात् प्रेमी और प्रियतमा का मिलन हुआ—

नानक लीन भयों गोबिन्द सों
ज्यों पानी संग पानी

परमात्मा से तदाकार हुई उनकी आत्मा जगत् के सपने में गाफिल पड़े हुए जीवों को जागरण का सन्देश देती हुई आज भी कह रही है—

जागो रे जिन जागना,
अब जागन की बारि।
फेरि कि जागो नानका,
जब सोवण पांव पसारि।।

क्या उस जागरण के मुक्ति दूत का सन्देश कोई नानक का देशवासी सुनेगा?

प्रणाम! शत-शत प्रणाम गुरु नानक देव को तथा शतकोटि प्रणाम उनके प्यारे गोविन्द को। किन्तु सबसे प्रथम प्रणाम उसको जो आज नानक की वाणी सुनकर नानक बनने को परमाकुल है।

15 नवम्बर 1959
दैनिक 'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

रहस्यवादी संत नानक

गुरु नानक के कई रूप—सामाजिक एवं धार्मिक सुधारक, एक ऐसे सौहार्दपूर्ण संगठन के संस्थापक, जिस समुदाय ने कालान्तर में भारत के इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण व उज्ज्वल योगदान दिया। इन रूपों में गुरु नानक के विषय में बहुत कुछ लिखा गया है। किन्तु, एक कवि, रहस्यवादी संत जो केवल स्वप्न ही नहीं देखते थे अपितु स्वप्नों को व्यावहारिक रूप देकर राष्ट्र को नई दिशा देने की क्षमता रखते थे। इस विषय में अधिक साहित्य नहीं मिलता। उनका रहस्यवाद सुन्दर काव्य गीतों के अनेक रंगों में मुखरित होता है।

मेरा कहने का यह उद्देश्य नहीं है कि नानक के गीत सामाजिक या आचरण शास्त्र से बिल्कुल अलग थे। बल्कि उनके गीतों में सामाजिक कष्टों, कुरीतियों से छूटने का संदेश स्पष्ट मिलता है। वे धार्मिक अंधविश्वासों, कुछ समुदायों द्वारा साधारण व्यक्ति, दलितों, पिछड़ी जातियों पर अत्याचार को देखकर बहुत क्षुब्ध थे। यह सब उनके गीतों में साफ झलकता है। सामाजिक एवं धार्मिक कुप्रथाओं के प्रति उनका दु:ख इन पंक्तियों में झलकता है—

मानव शब्दजाल में भ्रमित हो रहा है। धर्म में कर्मकाण्ड की महत्ता बढ़ रही है।

तीर्थ स्नान से क्या लाभ... यदि मन में अभिमान की मैल साफ नहीं हुई।

उन कर्मकांडों का नाश हो जिनसे मैं प्रियतम को भूल जाऊं।

केवल परमेश्वर के प्रति सच्चा प्यार ही मुझे गर्व से जिन्दा रखता है।

अथवा

जाति भ्रम है, नाम भ्रम है, सब जीवों का एक ही आश्रय है परमेश्वर।

वे कोरे शास्त्रीय ज्ञान को हेय मानते थे।

यदि वेद और कुरान मन को विषयों से मुक्त नहीं कराते तो निरर्थक हैं। धर्म केवल ग्रंथ पढ़ना नहीं।

सब प्राणियों के प्रति समभाव ही है—धर्म।

वे युद्धरत सुधारक नहीं थे।

नानक के गीतों में उनके समाजवादी एवं आचरणवादी चिन्तन का चित्रण एवं एक नई आन्दोलनकारी भावना का अवलोकन होता है। किन्तु उन द्वारा सकारात्मक सुधारवादी कार्ययोजनाओं का अधिक आभास नहीं मिलता । नानक संभवत: कभी भी लड़ाकू सुधारक नहीं रहे जैसे कि उन्हीं के समकालीन मार्टिन लूथर थे या समाज की कुछ संस्थाएं या मान्यताएं जो उन्हें पसंद नहीं थी, के विरुद्ध सशक्त कट्टर आन्दोलन खड़ा किया हो।

यह विरोधाभासी प्रतीत होता है। किन्तु यह विरोधाभास समाप्त हो जाता है यदि हम नानक के रहस्यवादी व्यक्तित्व का सही रूप से अध्ययन करें। एक रहस्यमयी आत्मा परम सत्य को सदैव आत्मसात् करती और उसके साथ तादात्म्य बनाए रखती है। यह परम सत्य के साथ सदा सीधा सम्बन्ध स्थापित करती है—बाह्य तंत्र-मंत्र या धार्मिक अनुष्ठानों, योग, प्राणायाम के माध्यम से नहीं अपितु परमसत्ता का अभिन्न अंग बनकर। यह एक अद्‌भुत रहस्यवादी अनुभूति है। ईश्वर रहस्यवादी संत के लिए एक ध्येय न रहकर एक अलौकिक अनुभव बन जाता है। यह स्थिति न खुशी की न शोक की, बस एक गहन व्योम (खालीपन-सा) होता है।

यह स्वाभाविक ही है कि इस प्रकार के आध्यात्मिक प्रयास प्रचलित लोकप्रिय मान्यताओं से मतभेद लाए। रहस्यवाद सदा ही सत्य की खोज में लगा रहा है। यह धार्मिक कट्टर धारणाओं और रूढ़िवादी मान्यताओं के विरुद्ध है। जब कुछ धार्मिक प्रथाएं केवल निर्जीव क्रियाएं बन कर रह जाती है तब रहस्यवाद वास्तविक आन्तरिक धर्म के रूप में मुखर होता है। नानक ने तत्कालीन धार्मिक रूढिवादियों के विरुद्ध प्रबल विरोध किया। वे इन प्रथाओं का अन्त चाहते थे क्योंकि यह सब सच्चे ज्ञान की प्राप्ति में बाधक है। वे थोथे योग का भी विरोध करते थे।

यौगिक-क्रिया जिसमें श्वास को हृदय (या फेफड़ों) में रोक लिया जाता है अथवा मस्तिष्क को शून्य-स्थिर बना कर श्वास-प्रश्वास की क्रिया करते हैं। इन सबका कुछ लाभ नहीं है।

नानक बाह्य धार्मिक प्रतीकों या अनुष्ठानों को व्यर्थ मानते थे। क्योंकि यह सब गंभीर व सत्य के खोजी साधक के लिए कुछ भी सहायक नहीं है।

धर्म ऐतिहासिक समाधियों के भ्रमण में नहीं
न ही श्मशान जाने में या ध्यान, मनन में।
धर्म विदेश यात्रा में नहीं,
तीर्थ-स्थानों में स्नान करने का भी धर्म नहीं होता।
धर्म तो विश्व की अपवित्रताओं में रहकर भी पवित्र रहना है।

यही तो सच्चा धर्म है।

इस प्रकार नानक रूढिवादी परम्पराओं, मान्यताओं, अन्धविश्वासों, दुराग्रहों से कुछ भिन्न रहकर, मधुर आस्था के अग्रदूत थे। वे विवादों से दूर रहते थे। वे मानते थे कि विवादों से केवल अहं की भावना पैदा होती है। जो आध्यात्मिक यात्रा को कुन्द कर देते हैं।

'जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।'

वे थोथे ज्ञान या चर्चा को व्यर्थ मानते थे। ऐसे व्यर्थ वाद-विवाद के प्रति उन्हें कुछ सहानुभूति नहीं थी।

'वह ज्ञान निरर्थक है—जो आपस में वाद-विवाद में उलझा दे।'

इस प्रकार नानक सच्चे रहस्यवादी परम्परा के साधक थे। रहस्यवाद किसी सम्प्रदाय या आग्रह, जिसके अन्तर्गत प्रेम या परम सत्य को किसी विशेष भाषा या पुस्तक ज्ञान की परिधि में बांध देते हैं, इन सबसे परे है। रहस्यवाद धीरे-धीरे साधक को दुनिया के भौतिक आकर्षणों से हटा कर अनन्त की साधना और साक्षात्कार की ओर प्रेरित करता है। उच्च रहस्यवादी संत अध्यात्म की चरम सीमा तक उठकर परम सत्य के दर्शन प्राप्त कर लेते हैं। यह एक आकस्मिक, अद्‌भुत अनुभूति है। जिसका वर्णन नानक के कई गीतों में मिलता है। यह दिव्य आनन्द केवल उन्हीं संतों को प्राप्त होता है जिनकी दृष्टि व्यर्थ के तर्क-वितर्क से धूमिल नहीं हुई है।

स्वयं को जानो Know thyself

स्वयं को जानना ही परम सत्य, चेतनाओं की चेतना के साथ सान्निध्य पाना है। यह इस गीत में बहुत सुन्दर ढंग से बताया है—

सत्य के घोड़ों के रथ पर बैठ,
सच्चे ज्ञान का सौदा बेचने को निकलो।
सद्‌गुण लम्बी यात्रा में खर्चा-पानी,
आने वाले कल की चिन्ता छोड़ो.....
तुम प्रियतम की नगरी पहुंच जाओगे—
अनन्त सुख मिलेगा—परमानन्द
और—अन्दर ढूंढ़ो—प्रभु दिल में रहता है।

यह ज्ञान परम सत्ता की अभिव्यक्ति है। परम चेतना जो अव्यक्त है और अवर्णनीय है। यह बाह्य रूप से भिन्न स्वतंत्र चेतनाओं में आध्यात्मिक एकता का दिव्य अनुभव है। यह अनुभूति केवल भावनात्मक नहीं है, न ही साधारण शिक्षा

या ज्ञान है। संवेदन, भावना तो केवल साधारण प्रकार से स्वयं को जानने की प्रक्रिया है। यह अनुभूति-वस्तुनिष्ठ या विचारधारा विशेष से बद्ध नहीं है, न ही उन पर आधारित है। यह तो 'स्व' से साक्षात्कार—परम चेतना से सीधा सम्पर्क है।

महान् यूरोपियन रहस्यवादी संत वरनार्ड ने इस स्थिति को इस प्रकार समझाया है—

'जैसे जल की एक बूंद मदिरा में मिलकर अपना अस्तित्व खो देती है। केवल मदिरा का रंग एवं स्वाद ले लेती है। मानव को उस परम अकथ्य मदिरा में अपने आप को मिला देना चाहिए। अपने आप को प्रभु की इच्छा पर छोड़ दें।' इससे स्पष्ट होता है कि नानक परम चैतन्य को आकृति रहित, निरंकार क्यों समझते हैं। इस भावपूर्ण गीत के माध्यम से नानक व्यक्ति और विचार, आकार और निरंकार की एकता को समझाते हैं—

वह स्वयं आनन्द है, स्वयं ही आनन्द लेने वाला है
वह स्वयं ही वस्त्र, स्वयं ही शय्या, स्वयं ही प्रियतम व प्रेमी
प्रियतमा, प्रसन्नमुद्रा, क्रीड़ारत है
वह स्वयं ही हंस और स्वयं ही सरोवर है
तुम ही जल कमल तुम्हीं तो सुन्दर पुष्प हो
तुम स्वयं को देख कर स्वयं ही प्रसन्न हो।

रहस्यवाद की भाषा—मैं समझता हूं कि निरंकार मानवीय भावनाओं से अप्रभावित सत्ता के उपासक नानक एक भक्तिमार्ग के संत नानक से काफी भिन्न हैं। उनके गीतों से ईश्वर के प्रति प्रेम साफ झलकता है। लेकिन केवल इस पक्ष को ही देखने से हम रहस्यवाद के सूक्ष्म तत्त्वों को भूल सकते हैं। रहस्यवादी का अलौकिक अनुभव तो अवर्णनीय है। भाषा में बद्ध नहीं किया जा सकता है। यह तो केवल वैयक्तिक अनुभूति है। इसलिए रहस्यवादी की भाषा कुछ विरोधाभासी, अव्यक्त, धूमिल-सी होती है। नानक समझते थे कि इस दिव्य, अवर्णनीय अनुभूति को शब्दों में बांधना कठिन होता है।

फिर भी जब नानक को कोई दिव्य अनुभूति होती तो उनके अंतर की ज्वाला, तूफ़ान, ज्वालामुखी गीत बनकर फूट आता था। रहस्यवादी अपने परमानन्द को मुखरित करने के लिए प्रतीकों का सहारा नहीं खोजता। प्रेम के, बलिदान के, पूर्ण समर्पण के प्रतीक।

आत्मा की परम सत्ता के साथ दिव्य अनुभूति की तीव्र इच्छा इन शब्दों में साकार हो उठती है—

आप अंधेरी रात में दुस्साहसी हो। मैं लम्बी रात्रि प्रियतम के बिना कैसे बिता पाऊंगा।

प्रेयसी का यौवन, जीवन पुष्प प्रियतम को मिले बिना साक्षात्कार किए बिना व्यर्थ ही नष्ट हो जाएगा।

नानक भक्त और भगवान्, प्रेमी और प्रियतम की एकात्मता में विश्वास रखते थे। वह भावना इन शब्दों में झलकती है—

प्रभु जी! आप सर्वज्ञ हैं, सर्वविद्यमान, सर्वशक्तिमान सागर हैं।
मैं एक क्षुद्र बूँद कैसे तुम्हें जान सकता हूं।
सब जगह आप को ही देखता हूं।
सागर से पृथक् होकर मैं बूँद तो खो ही जाऊँगा।

कवित्व का उत्कर्ष—यद्यपि नानक का अध्यात्म दर्शन, निरंकार, सर्वेश्वर, सर्वविद्यमान (जिसका कोई रूप, नाम नहीं है) पर आधारित था। उनकी भाषा से भावावेश नहीं झलकता। वे अनेक रूपों में विद्यमान परम सत्ता में विश्वास रखते थे। किन्तु वे इन्द्रियजनित विश्व और भावनाओं के प्रति अनभिज्ञ या शुष्क नहीं थे। वे धार्मिक संतों की वाणी के साथ-साथ विश्व के अनेक रूपों और दृष्टांतों से भी ज्ञान अर्जित करते थे। ग्रीष्म ऋतु की तपिश, शीत की ठंडक, जीवन के सुख-दुःख, उनके गांव के लोग, हजारों भक्तगण जो उनके दर्शन करने और आशीर्वाद पाने आते थे—वे सबमें प्रभु का दर्शन पाते थे। प्रकृति से उनका सान्निध्य-तारतम्य इस गीत से झलकता है—

सूर्य और चन्द्रमा के दीपक तुम्हारी आरती उतारे
आकाश तुम्हारी आरती का थाल
सारे ब्रह्माण्ड के चमकते सितारे इस थाल में गढ़े हैं।
चन्दन के वृक्षों की सुगन्धि तुम्हारी अगरबत्ती है।
पवन तुम्हारा शीतल पंखा—वन-उपवन सब फूल
ओ दिव्य प्रकाश के अधिष्ठाता—
यह कैसी अद्भुत आरती है—मेरे जन्म मरण के संकटहर्ता।

अति उत्तम भावनाएं, उत्कृष्ट गीत, जो विश्व के बहुत कम रहस्यवादी संतों के हृदय से प्रस्फुटित हुए हैं।

गुरुनानक : आध्यात्मिक जागरण के अग्रदूत

पंजाब को भारत का उत्तरी-पश्चिमी मुख्यद्वार कहा जा सकता है। यहां के वीर सपूतों ने हर विदेशी आक्रमण का बड़ी वीरता से सामना किया और उन्हें विफल बनाया। किन्तु, मध्यकाल में कुछ भयंकर आक्रमणों का मुहंतोड़ जवाब नहीं दिया जा सका। फलस्वरूप लगभग सम्पूर्ण भारत इन विदेशी आक्रांताओं से रौंदा गया और सन्तों और ऋषियों की इस पावन भूमि पर इसलाम की पताका फहराने लगी। पाँच नदियों का क्षेत्र पंजाब जहां पहले वेदमंत्रों का गायन होता था और जहां पाणिनि जैसा व्याकरण का ज्ञाता, चाणक्य जैसा कूटनीतिज्ञ, प्रसिद्ध वैद्य चरक और वासुबंधु व ब्रह्मगुप्त आदि विद्वान् पैदा हुए थे अब कष्ट और अशान्ति से त्रस्त था। इस संकट की घड़ी में महान् संत नानक भारत के क्षितिज पर उदय हुए। एक कवि ने बहुत सुन्दर पंक्तियों में इस प्रकार लिखा है—

He promulgated us love of true Name
the eternal Lord.
Gurunanak was born for the salvation of
the iron age.

उन्होंने प्रभु के पावन नाम का प्रसार-प्रसार किया। गुरु नानक ने मानवता का दु:ख और अज्ञानता से उद्धार के लिए अवतार लिया था।

नानक का जन्म कार्तिक पूर्णिमा को लाहौर के समीप तलवंडी गांव में हुआ था। उनके मुख की दिव्य आभा और सरस लावण्य सभी को आकर्षित करता था। यह भावी अवतार सूर्य कुल में पैदा हुआ। ऐसा वंश जिसमें वैदिक काल में भगवान् राम भी जन्मे थे। इनके परिवार में वेदों के पठन-पाठन की परम्परा थी। अत: वे वेदी (बेदी) कहलाने लगे। नानक ने भक्ति, शुद्ध आचरण और नैतिकता की शिक्षा अपने परिवार से ही प्राप्त की थी। विद्यालय जीवन के आरम्भिक काल से ही वे शिक्षकों को अपने ज्ञान और रहस्यवाद के गहन विचारों से आश्चर्यचकित कर देते थे।

उन्होंने अपने गणित के शिक्षक को कहा था—

अज्ञान को घोलकर इसकी स्याही बना लें, जीवात्मा परमात्मा की शरण में हो।

जरा बुद्धि की स्लेट पर प्रेम की कलम से प्रभु की अमरगाथा लिखें।

पंडित और मौलवी

नानक को दिव्य भाषा संस्कृत एवं राजभाषा फारसी को सीखने का सौभाग्य मिला था। वे ओंकार और अल्लाह की समीक्षा कर सब को मंत्रमुग्ध कर देते थे।

बालपन से ही नानक परिपक्व बुद्धि, ज्ञान और भक्ति से परिपूर्ण थे। भारतीय संस्कृति में दृढ़ निष्ठा लिए नानक एक बाल वेदान्ती हो गए थे। नानक सदा गहन चिन्तन में खोये रहते थे। उनके पिता ने उनकी चिकित्सा के लिए एक वैद्यजी को बुलाया तो नानक बोल उठे—

वैद बुलाया वैदगी, पकड़ टटोले बांह।
भोला वैद न जाणया, दर्द कलेजे मांह।।

गुरु नानक एक उच्च मूल विचारक थे। उनके दैवी विचारों ने उस समय की धार्मिक, नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक आकांक्षाओं को समझा। वे अद्वैतवाद के उद्घोषक थे। उन्होंने इस मूल सत्य को समझा कि पूरे ब्रह्माण्ड का परम सत्य एक शक्ति है। जो सबकी नियन्ता है। वे वैदिक अद्वैतधारा के मंत्र **'एकोऽब्रह्म द्वितीयोनास्ति'** के पूर्ण समर्थक थे। उनकी आध्यात्मिक विचारधारा वेदान्त गुरु वेदव्यास और अद्वैतवाद के सर्वश्रेष्ठ समीक्षक जगद्गुरु शंकराचार्य के समान ही थी। इस परिवर्तनशील और विनाशशील ब्रह्माण्ड के पीछे एक अमर और स्थायी सत्ता है जो नाम और रूप से परे है। वह अद्भुत एवं सर्वशक्तिमान है। उनकी लोकप्रिय प्रार्थना अरदास में 'एक ओंकार। सत्गुरु प्रसादं' की पूजा अर्चना की गई है।

नानक कहते हैं, केवल एक ही ईश्वर है। उसका नाम सत्य है। जो ॐ के शब्द से प्रख्यात है। वह कर्ता, निर्भय, निर्वैर, अमर, अजन्मा तथा निर्विकार है। गुरु की कृपा से उसका नाम जपिये। गुरु नानक ने आदि धर्म को पुनः नए रूप में हमारे सामने प्रस्तुत किया—जीवन में वास्तविक, चिर स्थायी आनन्द केवल परमसत्ता के बोध से ही प्राप्त होता है।

पूर्व के वेदान्तियों और पश्चिम के रहस्यवादी संतों की तरह नानक भी Pantheism सर्वेश्वरवाद में विश्वास रखते थे। अपने निजी जीवन से उन्होंने ब्रह्मसूत्र 'सर्वं खल्विदम् ब्रह्म' पर दृढ़ विश्वास और श्रद्धा दिखाई। इसका अर्थ है ईश्वर ही सब कुछ है और सब कुछ ईश्वर है। एक बार नानक मक्का के रेगिस्तान की रेत पर सो रहे थे। उनके पांव पावन तीर्थ काबा की ओर थे। यह देख कर कुछ मौलवी उनके आपत्तिजनक ढंग से सोने पर क्रोधित हुए तो नानक ने कहा कि आप मेरे पांव उधर मोड़ दीजिये जहां अल्लाह न हो। कहा जाता है कि उन्होंने नानक के

पांव जिस दिशा में फेर दिये, काबा भी उसी दिशा में आ गया। यह घटना इतिहास में सिद्ध हो या नहीं किन्तु नानक के मन में यह दृढ़ निश्चय था कि कोई ऐसा स्थान या दिशा नहीं जिसमें प्रभु न हों। इसी प्रकार जगन्नाथपुरी मंदिर में पारम्परिक आरती को देखकर नानक गा उठे—

गगन माया थाल रवि चन्द्र दीपक है बने
तारका मण्डला जनक मोती।

आकाशरूपी विस्तृत थाल में सूर्य और चन्द्र दीपक की भांति चमक रहे हैं। असंख्य तारागण भी चमचमाते मोतियों के समान हैं। चन्दन के वृक्षों की दिव्य सुगन्धि आपकी अगरबत्ती है। मन्द-मन्द बयार आपके पंखा है। प्रकाशपुञ्ज प्रभु! सभी वन उपवन आपकी पूजा के लिए खिलते, फूलते हैं।

नानक हर पल प्रभु की सत्ता और महानता को अनुभव करते थे। और कह उठते थे—

प्रभु के नाम जपने में ही जीवन।
प्रभु को भूलने पर केवल मृत्यु है।।

नानक मानते थे कि प्रभु को पाने का मार्ग केवल उसका नाम जपना है। 'नामजप' का बहुत महत्त्व होता है। बुद्ध और उपनिषदों की तरह नानक भी मानते थे कि विश्व दु:खों का घर है। उनमें उपनिषदों के ज्ञान के आशावाद एवं सकारात्मक विचारधारा से सहमति है और बौद्ध धर्म की उदासीन एवं नकारात्मक विचारधारा से पूर्णतया स्वतंत्र थे। नानक भक्ति द्वारा प्रभु की कृपा प्राप्त कर संकटों से छुटकारा पाने की राह दिखाते हैं। जहां उपनिषद् ज्ञानयोग का मार्ग सिखाते हैं वहां नानक निर्गुण भक्ति का उपदेश देते हैं। वे नामजप की अद्भुत शक्ति का प्रसार-प्रचार करते हैं—

नानक दुखिया सब संसार।
सोई सुखी जिन नाम आधार।।

सच्चे वेदान्ती, गुरु नानक का विश्वास था कि प्रभु हम सब में विराजमान हैं। उन्हें उन लोगों पर दया आती थी जो प्रभु को ढूंढ़ने बाहर भागे फिरते हैं। नानक रहस्यवाद के एक सुन्दर गीत में कहते हैं—

काहे रे बन खोजन जाय,
पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है, मुकर मांहि जस छाई।
तैसे ही हरि बसे निरंतर, घट महिं खोजो भाई।।

यह सब विचार उस आध्यात्मिक रूप से उन्नत महापुरुष के हैं। इन उच्च विचारों के धनी नानक अपने आचरण से बहुत ही सादे और कोमल प्रवृत्ति संत थे।

ईश्वर के परम भक्त गुरु नानक अन्य भक्तों और संतों का बहुत आदर करते थे। उन्होंने प्रभु के भक्तों के बारे में लिखा था—

हऊं कुरबाने जाऊं तिन्हां दे।
लेन जो तेरा नाऊं....।।

एक अन्य गीत में अपने हृदय की गहराइयों से कहते हैं—

सपने में घबराय के जिस मुख निकसत राम।
तिन के पग की पाहिनी नानक मेरो चाम।।

यदि भयानक स्वप्न देखने पर कोई व्यक्ति घबरा कर भी राम नाम का उच्चारण करता है। नानक ऐसे पवित्र व्यक्ति के पांव की जूती बनने के लिए अपने शरीर की चमड़ी तक देने के लिए तैयार है।

गुरु नानक एक फकीर के रूप में प्रसिद्ध हुए थे। पर दान लेकर जीना उन्हें पसंद नहीं था। सब साधन होते हुए भी स्वेच्छा से फकीरी अपनाई थी। यह भक्ति का जरूरी अंग है। वे कर्मयोग में विश्वास रखते थे।

नानक सांसारिक लोगों को कर्म का उपदेश देते थे। साथ ही वे कर्मों के बंधन भी समझते थे। प्रभु की कृपा से ही जन्म-मृत्यु के बंधन से मुक्ति पाई जा सकती है। अकसर कर्म में अधिक विश्वास करने वाले भक्ति योग या गुरु कृपा पर अधिक आस्था नहीं रखते। लेकिन भगवद्गीता की तरह नानक कर्म और भक्तियोग का सुन्दर सामंजस्य प्रस्तुत करते हैं—'सुबह ब्रह्म वेला में प्रभु का नाम स्मरण करें। केवल कर्म से पुनर्जन्म होगा ही। प्रभु का नाम जपने से मोक्ष का द्वार मिल जाता है।'

नानक करुणा और प्रेम की मूर्ति थे। उन्होंने सत्य, प्रेम, भाईचारा और सेवाभाव का हमें पाठ पढ़ाया। वे भारत में धार्मिक क्रान्ति के अग्रदूत थे। एक समय पूरा पंजाब प्रांत उनके प्रेम, सद्भावना और भक्ति के गीतों से गुंजायमान था। वे मानवतावाद और शान्ति के महान् संवाहक थे। वे धर्म में मानवीय मूल्यों के समर्थक थे। नानक सदा इन्द्रियों पर अनुशासन, संतोष, मानवता, प्रेम, गुरु के प्रति आदर, निष्काम सेवा, अन्तर्ज्योति की खोज और भाईचारे का उपदेश देते थे। वे निस्संदेह भारत के महान् सांस्कृतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक नवजागरण के दूत थे। जब तक ब्रह्माण्ड में सूर्य चमकता रहेगा, गुरु नानकदेव जी का उपदेश और उनकी वाणी अमर रहेगी।

गुरुवाणी में कृष्ण चरित्र

भारत की एकता के साक्षात्कार के लिए भारतीय जनगण के हृदय में ध्वनित होने वाली राम तथा कृष्ण चरित की अमर रागिनी का श्रुति दर्शन अनिवार्य है। कैलास से लेकर कन्याकुमारी तक तथा कामरूप से द्वारका तक प्रदेश, प्रकृति, पंथ, वेशभूषा, भाषा, भोजन तथा रीति-रिवाज की असंख्य विभिन्नताओं के उपरान्त भी हमारे कोटि-कोटि हृदयों को एक ही स्नेह तार में गूंथने वाले तत्त्व हैं—श्रीराम एवं श्रीकृष्ण चरित। कोट्यावधि भारतवासियों की हृत्तन्त्री राम एवं कृष्ण के नाम पर समान रूप से झंकृत हो उठती है। भारत की भाषाएँ भले ही अनेक हैं पर उनका अन्तःस्थ भाव एक है, भारतीय जनगण के हृदय के तार भले ही अनेक हैं पर उनकी झंकार एक है। उसी एक झंकार को श्रुतिगोचर करने का पुण्यपावन दिवस श्रीकृष्ण जन्माष्टमी महोत्सव आया है।

आज सामान्य रूप से समस्त देश तथा विशेष रूप से पंजाब प्रदेश की परिस्थिति विषम है। भारत के सांस्कृतिक ऐक्य के सूत्र शिथिल पड़ गए हैं, स्वार्थ के शत-शत कौरव उत्पात मचा रहे हैं, मातृभूमि के वास्तविक शत्रुओं से युद्ध न करके अपनों के विरुद्ध ही मोर्चा लगाने वाले दुर्योधन (भ्रष्ट योद्धा) कृपाण ताने देश की अखण्डता का खून करने को उद्यत हैं, दुःशासन (बुरे शासन) के पापी एवं असह्य करों (हाथों अथवा टैक्स) ने भरी सभा (विधानसभा इत्यादि) में असहाय प्रजारूपी द्रौपदी का चीरहरण कर उसकी लाज लूट ली है, देशभर के अनेक भू-भाग (आधा पंजाब, सिन्ध, ब्लोचिस्तान, सीमान्त, आधा बंगाल, गोआ तथा हिमालय का 14 हजार वर्गमील क्षेत्र) पारतंत्र्य के कंस-कारागार में पड़े कष्ट भोग रहे हैं। जरा (बुढ़ापे) में दुरभिसन्धियाँ करने वाले जरासन्धों की धर्मनिरपेक्ष नीति-नीड़ में धर्म-नीति बन्दिनी पड़ी है, स्वयं भारत के बूचड़खानों में प्रतिदिन तीन लाख गोवंश के गले पर छुरी चलती देख आज गौएँ अपने प्यारे गोपाल को कातर वाणी में पुकार रही हैं, चीन-रूपी शकुनि अपनी कूटनीति के दाँव-पेंच से भारतरूपी युधिष्ठिर को छल रहा है, साम्यवादी बकासुर सारे देश को खा जाने के लिए अपना मुख फैला रहा है, देश के अन्दर बैठे हुए बकासुर-बन्धु अपने चंचुप्रहार से राष्ट्र को भीतर से खोखला कर रहे हैं; पाकिस्तान रूपी कालयवन भी देश की मान-मथुरा पर कुदृष्टि

जमाए बैठा है। आन्तरिक विग्रह एवं बाह्य संकटों से घिरा हुआ भारत आज अपने भगवान् को पुकार रहा है। आज देश का जनगण पुनः उस ऐक्य के अमर सन्देश को सुनने के लिए आतुर है जो महाभारत महाकाव्य में शाश्वत बनकर गूँज रहा है—

न वै भिन्ना जातु चरन्ति धर्मम्, न वै सुखं प्राप्नुवन्तीह भिन्ना।
न वै भिन्ना गौरवं प्राप्नवन्ति, न वै भिन्ना प्रश्रयं रोचयन्ति।।

अर्थात् बिखरे हुए, असंगठित लोग न धर्म पर चल सकते हैं, न सुख प्राप्त करते हैं, न गौरव तथा न ही कोई आश्रय, प्रश्रय का आनन्द पा सकते हैं।

आज वेद, उपनिषद्, गीता एवं गुरुवाणी की धरती पर विग्रह के बादल उमड़ रहे हैं। सिख सम्प्रदाय को हिन्दू जाति का अभिन्न अंग बनाने वाली श्रीकृष्ण चरित की अमर रागिनी आज हम भूल गए हैं। इसीलिए आज यह परस्पर विग्रह, विद्वेष एवं वैषम्य दृष्टिगोचर होता है। स्वयं सिख गुरुओं ने श्रीकृष्ण चरित का जो अमर गान गाया है, यदि आज वह पुनः हमारे हृदयों में प्रतिध्वनित होने लगे तो समस्त विभिन्नताएँ दूर कर हम एक सबल-सुसंगठित राष्ट्र के रूप में खड़े हो जाएँ।

श्रीगुरुग्रन्थ साहब

श्रीगुरुग्रन्थ साहब, सिख सम्प्रदाय का सर्वमान्य धर्मग्रन्थ है, ज्ञान, भक्ति एवं वैराग्य का अगाध सागर है। उसमें लगभग 30 हजार बार श्रीराम का नाम आता है तथा लगभग 16 हजार बार श्रीकृष्ण एवं हरि, गोविन्द, गोपाल इत्यादि नाम आये हैं। यदि श्रीगुरु ग्रन्थ साहब में से राम एवं कृष्ण के नाम वाले पृष्ठ निकाल दिए जाएँ तो डेढ़ हजार पृष्ठों के विराट् ग्रन्थ में से जिल्द के प्रथम एवं अन्तिम पृष्ठ के अतिरिक्त कुछ भी न बचे। श्रीराम एवं कृष्ण के नाम से गूँजती हुई गुरुवाणी का प्रतिदिन-पाठ करने का दावा करने वाले सज्जन भी यदि राम एवं कृष्ण के भक्त, अ-केशधारी हिन्दुओं से शत्रुता रखें तो स्वयं लज्जा के लिए भी लज्जित होने का प्रसंग है।

सर्वं कृष्णमयं जगत्

श्रीगुरुग्रन्थ साहब की साक्षी है—

एक कृष्ण सर्व देवा देव देवोत् आत्मः।
आत्मं श्री वासुदेवस्त जे को जानस भेद
नानक ताका दास है, सोई निरंजन देव।।
आपे गोपी आपे कान्हा, आपे गउ चराने वाला।
आप उपावे, आप खपावे, तुध लेप नहीं इक तिलरंगा।

(गुरु अर्जुनदेवजी)

उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण के निर्गुण एवं सगुण—दोनों रूपों की वन्दना श्रीगुरु ग्रन्थ साहब में गायी गयी है।

श्रीकृष्ण चरित के पद

श्री गुरु नानकदेव जी गाते हैं—

हरि का नाम सदा सुखदाई।
पांचाली की राज सभा
में, हरि ने लाज बचाई।

पांचाली (द्रौपदी) की राजसभा में लाज बचाने वाले निश्चय ही महाभारत की महाविभूति योगेश्वर श्रीकृष्ण ही हो सकते हैं, कोई निर्गुण हरि नहीं।

श्रीगुरु ग्रन्थ साहब के अन्तर्गत भक्त नामदेवजी का पद है—

हरि हरि कान पूतना तरी,
बाल घातनी कपटहिं भरी।
केसी कंस मंथन जिन लीला,
जीय दान काली को दीया।
प्रणवे नामा, ऐसो हरी,
जाय जपत, भय-अपदा टरी।।

स्वयं गुरु नानकदेवजी ने गाया है—

जुब महि जोरि छली चंद्रावलि
कान्ह कुसनु जादमु मइया।
पारजातु गोपी ले आइया
निंद्रावन महि रंग किया।

अर्थात् यजुर्वेद में कहा है कि 'चन्द्रवंश में कान्ह कृष्ण यादव बड़े वीर हुए, उन्होंने वृन्दावन में गोपियों के संग रास रचाई।' प्रसंग चारों वेदों के वर्णन का है। चाहे यजुर्वेद में श्रीकृष्ण चरित का होना ऐतिहासिक तथ्य न हो फिर भी उक्त पद से गुरुनानक की कृष्ण-भक्ति अवश्य प्रकट होती है।

चतुर्थ गुरु की साक्षी है—'जिउ प्रकार द्रोपती दुसरां आनी हरि हरि लाज निकमे।'

श्रीकृष्ण स्तुति में गुरुनानक कहते हैं—'श्री उधाई नुमति हथि कोनो कर्ता नथि किसा बड़ा भया' जिसने सब जीवन सृष्टि करके सारा विधान अपने हाथ में रखा हुआ है, उनके लिए कालीय नाग को नाथना ही बड़प्पन का एकमात्र कारण नहीं था।

श्रीकृष्ण का सुधावर्षी नाम

सिख गुरुओं ने हरि नाम की अनन्त महिमा गाई है।

गुरु नानकदेवजी जीव को उपदेश करते हैं—

जपहु मन मेरे राम नारायण गोविन्दा हरि माधो।

अन्यत्र वे गाते हैं—

हरि चरण कमल मकरंद लोभित माते
अनदिनो मोहि आहो विभाग।
कृपा जल देहि नानक सारिंग कउ
होर गाते तेरै नामि बासा।।

हरि चरण कमल के मकरंद का लोभी बना हुआ गुरु नानकदेवजी का मन-भ्रमर प्रभाव शुद्ध वैष्णव भक्ति की रागिनी गा रहा है। चतुर्थ गुरु श्री रामदासजी की हृदय-वीणा गोविन्द-गोविन्द ही गा रही है।

गोविंदु गोविंदु प्रीतम् मनि प्रीतम्
मिलि सतसंगति संवाद मनु मोहै।
जीप गोविंदु गोविंदु, धिआइए।
सम कउ दानु देह प्रभ ओहै।
मेरे भाई जना मोकउ, गोविंदु गोविंदु गोबिन्दु मन भी है।
गोविंदु गोविंदु गोविंदु गुण माना मिलि गुरु साध संगति जन सेहि।

श्रीगुरुग्रंथ साहब के अन्तर्गत पृ. 1082 पर पंचम गुरु श्री अर्जुनदेव जी का राग मारू में गाया हुआ सहस्रनाम है जो भगवान् श्रीकृष्ण के असंख्य नामों से गूँज रहा है—

अचुत, पारब्रह्म परमेसुर अंतरजामी।
मधुसूदन दामोदर सुआमी।
रिखीकेस गोवर्धन धारी
मुरली मनोहर हरि रंगा।
मोहन माधव कृष्ण मुरारे।
जगदीसुर हरि जीउ असुर संघारे।
जग जीवन अविनासी ठाकुर
घट घट वासी है संगा।।

भगति बछलु अनाथह नवो।

गोपीनाथ सगल है साथे।

वासुदेव निरंजन दाते

नानि न साकउ गुण अंगा।।

मुकुंद मनोहर लखमी नारायण।

द्रौपदी लज्जा निवारि उधारण। कमला कन काहि कंतूहल।

अनद विनोदी निह संगा।

गुरु अत्यन्त कलारुचिर एवं भाव गर्भित स्तुति में आगे गाते हैं—

निराहारी निरतैक सभाइआ।

धारि खेलु चतुरभुज कहाइआ।

सांवल सुन्दर रूप वाण वहि

नेणु सुनत सम मौहेगा।

वन गाला विभूखन कमल नैन,

सुन्दर कुण्डल मुकुट बैन।

संख चक्र गदा है धारी

नहा सारथी सत संगा।

....

आपे गोपी आपे कान्हा

आपि गऊ चरावै वाना।

आप उपा वहि आप रतपावहि

बुधु लेपु नहीं इकु तिलु रंगा।।

अन्यत्र पंचम गुरु गाते हैं—

दोन दय आल गोपाल गोविन्दा हरि धिआवहु।

श्रीगुरुग्रन्थ साहब में श्रीकृष्ण एवं विष्णु के निम्नलिखित नामों की पुनः-पुनः वन्दना गायी गयी है—मधुसूदन, दामोदर, हृषिकेश, गोवर्धनधारी, मुरलीमनोहर, हरि, मोहन, माधव, कृष्ण, मुरारी, कान्ह, धरणीधर, नृसिंह, नारायण, वामन, श्रीराम, वनमाली, चक्रधारिण, गोपीनाथ, वासुदेव, मुकुन्द, लक्ष्मीनारायण, कमलाकांत, श्रीरंग, केशव, चतुर्भुज, श्यामसुन्दर, शंख-चक्रधारी, जगन्नाथ, गोपाल, शारंगधर, भगवान, विठूला, धनंजय, गोविन्द, गोपाल, श्रीधर इत्यादि।

अवतारवाद

चाहे कुछ विचारक अवतारवाद में विश्वास नहीं रखते, किन्तु स्वयं श्रीगुरुग्रन्थ साहब वामन, बलि, प्रह्लाद, ध्रुव, नरसिंह, राम, कृष्ण इत्यादि अवतारी विभूतियों के नामों से गुंजायमान है। ग्रन्थ साहब में भाटो की वाणी सवैयों में है जहाँ गुरु नानकदेवजी को भी नरसिंह, वामन, राम, कृष्ण के समान विष्णु का अवतार कहकर उनकी वन्दना की गयी है। सुदामा, द्रौपदी, ध्रुव-प्रह्लाद इत्यादि के चरित्र तो गुरुओं ने भी आनन्द से गाए हैं। भाई गुरुदासजी की वाणी में विदुर, सुदामा, धन्ता, नामदेव इत्यादि भक्तों के चरित्र अत्यन्त भावपूर्ण है।

दशमेशगुरु का कृष्ण चरित

अपने महान् 'दशम ग्रन्थ' में गुरु गोविन्दसिंह जी गाते हैं—

मै नगवे शाहिं प्रथम मनाऊँ,
किसन निशन काहूं वहि ध्याऊँ।
कान सुनै, पहचान न तिन सौ, लिव लागी मोरी पग इनसौं
कृष्ण यथामति चरित्र उचारौं, चूक ह्वेय कवि लेहुँ सुधारों।

प्रथम दो पंक्तियों में भ्रम होता है कि किशन निशन में उनकी आस्था नहीं है किन्तु 'लिव लागी मोरी पग इन सौं' से गुरु की गम्भीर सहज भक्ति प्रकट हो जाती है।

भगवान श्रीकृष्ण के रूप को देखकर उनका मन स्वतः कह उठता है—

'मुख जाहि विशायपति के सम है।
बन सें तिन सीत रिझयो अरूं गायो।
वा सुर की धुन निज सुउन्न में,
ब्रह्म का त्रिया सबही सुनियायो।
धाई चली हरि के मिलवे कहूं।
प्रिय श्याम सबके मन में जब भायो।
श्री कान्ह मनो गृगनी जुबती।
छलिने कहुं घटंक हे रबनायो।'

गुरु गोविन्द सिंह के विचार में मुरली की धुन सुन सभी यंत्रवत् खड़े रह जाते हैं।

एक निर्मल सन्त की मुरली पर पंक्तियाँ देखिए—

द्वापर कन्हाई बनि बंसुरी बजाई सुनि,
सुर मुनि नर काहूं धीर न तलै कइयों।
कलिजुग तारिबे कोई साधन को पारिबो को,
सुन्दर सरूप गुरु गोविन्द हवै अवत्रवो।।

भगवान् की रूप-माधुरी भी गुरु गोविन्द सिंह से अछूती नहीं रही। यह तो है ही परन्तु यहाँ रूप और मुरली वर्णन देखिए—

अन्य कवियों की भांति उन्होंने लिखा है—

टाढ़ रही जमुना सुनि कै
धुनिराग मलै सुबिबे को चेही हे,
मोह रहे बन के गज औ,
इकठे मिलि आवन सिंह सहे है,
अवात है सुर में डल के सुर
त्याग सबे सुर ध्यान कहै है।
महारास कासे तो मानो स्वयं देखने लगे
जब आई है कातक की रतु सीतल,
कान्ह तवै अति ही रसिया,
संग गोपाल खेले विचार करमो,
भे पुतो भगवान् गंथ जसिया,
अपवित्रन लोगनि के जिह के पग
लागत पद सबै नसिया
तिह को सुनि तिरियन के संग खेल।
निबा रहु काम उहे बसिया।

भगवान् की गोवर्धन-लीला को उनकी इन पंक्तियों में देखिए—

आयो है उब्द त्रूत्र के दिवोस
सभी मिलि गोपन बात उचारी

भगवान् कृष्ण के अनन्य उपासक थे वे—

'जो अभा ब्रजनाथ की गाइ हूँ और कविमन बीच करेगे।

इस तरह लगभग भगवान् कृष्ण के सभी रूप उनकी लेखनी के बीच आये हैं।

पंजाब सरकार द्वारा नानक निन्दक इतिहासकारों का सम्मान

(हरवंशलाल ओबराय, अध्यक्ष दर्शन एवं भारतीय संस्कृति विभाग, डीएवी कालेज, जालंधर)

'पंजाब का इतिहास' नामक पुस्तक पंजाब विश्वविद्यालय के इण्टरमीडिएट के विद्यार्थियों को पढ़ाई जाती है। इस पुस्तक के चार लेखक पंजाब के विख्यात विद्वान् हैं—डॉ. हरिराम गुप्ता, डॉ. आर.आर. शेठ्ठी, डॉ. किरपाल सिंह नारंग और प्रो. लालसिंह ज्ञानी। सुना गया है कि पंजाब सरकार ने इन लेखकों को सम्मानार्थ पाँच हजार रुपये प्रति लेखक दिया है और इस पुस्तक लेखन पर उन्हें बहुत बधाई और साधुवाद भी दिया है। इस पुस्तक के पृष्ठ 54 पर गुरु नानकदेव जी के बारे में कुछ विचित्र-सा लिखा है।

'जब गुरु नानकदेव तालुम्बा से कुरुक्षेत्र पहुँचे उस समय कुम्भ का महापर्व था। बहुत सारे भक्तगण गुरु नानकदेव के दर्शन हेतु वहां आए थे। एक भक्त ने अपना प्यारा और पालतू हरिण नानकदेव जी को भेंट किया। गुरु जी ने उस हरिण को कटवाया और उसका मांस पकाकर सब भक्तों में बांट दिया। यह देखकर कुछ ब्राह्मण भक्त आश्चर्यचकित और हक्के-बक्के रह गए। गुरु जी ने समझाया कि मांस खाने या मद्यपान में कुछ भी पवित्र, अपवित्र या भला-बुरा नहीं है। मनुष्य को अपने मन की शुद्धता पर ध्यान देना चाहिए न कि भोजन पर।'

मैंने किसी भी साहित्य या नानकदेव की जीवनगाथा में इस प्रकार नहीं पढ़ा है। परम पवित्र 'गुरुग्रंथ साहब' में गुरु नानकदेव ने कहा है—

जो रत लगे कपड़ा, जामा होए पलीत।
सो रत पीवे मानसां कैसे निर्मल चीत्त।।

प्रसिद्ध विद्वान् श्री वियोगी हरि ने अपनी पुस्तक 'संत वाणी' में गुरु नानकदेव के मुख्य उपदेश इस प्रकार लिखे हैं—

क्या बकरी, क्या गाय और क्या अपना जाया।
सब का लहू एक है साहब फरमाया।।

पीर दिगम्बर औलिया सब मरने आया।
नानक जीव न मारिये भरने को काया।।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के मत के अनुसार गुरु नानकदेव अहिंसा के महान् प्रचारक और समर्थक थे जिन्होंने सदैव मांसाहार का विरोध किया था। गांधीजी ने गुरु गोविन्द सिंह के विषय में (दिसम्बर, 1940) ज्ञानी गुरमुख सिंह मुसाफिर को इस प्रकार लिखा, 'गुरु जी सदैव अहिंसा का उपदेश देते थे। वे वीरता और तलवार का उपयोग केवल तभी करते थे जब पाप और दुष्टता मिटाने के लिए इसकी आवश्यकता होती थी।' यही गुरु गोविन्द सिंह की वीरता और तलवार का सही स्वरूप था। किन्तु, प्रिंसिपल तेजासिंह इस विचार को सिक्ख गुरुओं के विषय में भ्रान्तिपूर्ण समझते हैं।

गुरु नानकदेव एक महान् संत थे जिन्होंने सभी प्राणियों में एकता का दर्शन किया। वे सभी जीवों को समान मानते थे। किसी जीव की हिंसा का उपदेश नहीं देते थे। यह कहना कि नानकदेव निरीह जीवों की हत्या करवाते थे, पूर्णतया असत्य और भ्रान्तिपूर्ण है। यदि इन विद्वान् लेखकों का 'पंजाब का इतिहास' पुस्तक में लिखा वृत्तांत सत्य है तो यह गुरु नानकदेव की निष्ठा और भक्ति पर काला धब्बा और कलंक है क्योंकि बाबा नानकदेव अपनी वाणी में सदा ही अहिंसा का उपदेश देते थे। गुरु अमरदास ने भी अपनी वाणी में गुरु नानकदेव की अहिंसा का जोरदार समर्थन किया है।

'आप मरे, और न मारे'

क्या कुछ सिक्ख धर्म के प्रबुद्ध इतिहासकार इस विषय पर अपने विचार व्यक्त करेंगे?

पिछले हजार वर्षों के दौरान हम केवल भावुकतापूर्ण साहित्य की रचना कर सके हैं। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि देश ने केवल मृदु साहित्य को ही प्राथमिकता दी और इसके फलस्वरूप पिछले हजार वर्षों के दौरान लिखे गये अधिकांश साहित्य को यदि निचोड़ा जाय, तो उससे केवल आंसू ही निकलते हैं।

राणा प्रताप को नैतिक बल प्रदान करने वाले सन्त श्रीचन्द्र

सिख धर्म के संस्थापक गुरु नानक देव के ज्येष्ठ पुत्र, उदासीन सम्प्रदाय के महान् सन्त पुण्यश्लोक श्री श्रीचन्द्राचार्यजी का जन्म भाद्रपद मास की शुक्ल नवमी के दिन संवत् 1561 में हुआ था। इन चमत्कारी सन्त ने पेशावर, काबुल, कंधार, सिंध और पंजाब में स्मार्त वैदिक धर्म का प्रचार किया। जनता को शासन के अत्याचार से बचाया। कहा जाता है कि जब गुरु नानक देवजी ने गुरु गृह की गद्दी गुरु अंगद देव को दे दी तो श्रीचन्द्रजी ने उपहास में कहा कि 'हुआ क्या यदि गद्दी किसी कोढ़ी कराइ' को दे दी हो।' इस बात से ही कहा जाता है कि दूसरी बादशाही से लेकर 5वें गुरु तक सभी गुरुओं की अंगुलियों में कोढ़ के चिह्न पाए जाते थे। गुरु अर्जुन ने श्रीचन्द्रजी से मिलकर यह कोढ़ क्षमा करवाया था। अमृतसर का सरोवर बनाने के पीछे भी बाबा श्रीचन्द्रजी की ही प्रेरणा थी। गुरु अर्जुन देव ने जब तरनतारन का सरोवर बनवाया तो बार-बार उसका पानी बह जाता था। कहा जाता है कि बाबा श्रीचन्द्रजी ने उसे एक बावली से मटका भरकर वहाँ ले जाने को कहा तब कहीं सरोवर का पानी ठहरा। श्रीचन्द्रजी के जीवन की एक घटना जो प्रायः इतिहास के प्रकाश में अभी तक नहीं आई है, वह है उनकी महाराणा प्रताप से भेंट। उन दिनों मेवाड़ केसरी वन-वन घूम रहे थे। श्रीचन्द्रजी ने उन्हें स्वप्न में दर्शन दिया। प्रातःकाल महाराणा प्रताप उनसे मिलने के लिए गए। श्रीचन्द्रजी ने प्रताप को नैतिक बल दिया तथा कहा कि जीत या हार तो सदा प्रभु के हाथ में है किन्तु धर्म के लिए युद्ध करने वाले पर ईश्वरीय आशीर्वादों की वृष्टि होती है। उन्होंने प्रताप को यह भी बताया कि प्रताप और वे (श्रीचन्द्रजी)—दोनों रघुकुल-गौरव रामचन्द्र महाराज की सन्तान हैं। लव और कुश की सन्तान ने जब लाहौर से प्रस्थान किया तो कुछ सन्तानें नेपाल में जा बसीं, कुछ राजपूताने में और कुछ काशी में जाकर वेद पढ़ने से वेदी कहलाईं। श्रीचन्द्रजी ने प्रताप को बताया कि आप राजस्थान के सूर्यवंशी राजा हैं और हम वेदाध्ययन के कारण वेदी कहलाने वाले सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं। दोनों भगवान् राम की सन्तानें हैं और भाई-भाई हैं। इससे प्रताप का नैतिक बल बढ़ा और वह श्रीचन्द्रजी के प्रेम से गद्‌गद हो गया। कहा जाता है कि भामाशाह को प्रताप की सहायता के लिए सर्वस्व अर्पण करने की प्रेरणा देने वाले भी महान् सन्त बाबा श्रीचन्द्र ही थे।

आत्मा के अमरगायक गुरु अर्जुनदेव

आज से पूरे 353 वर्ष पूर्व अविभाजित पंजाब की राजधानी लाहौर में, रावी के तट पर जिस महान् विभूति, हुतात्मा गुरु अर्जुनदेवजी का रोमांचकारी बलिदान हुआ, उनके नश्वर शरीर का तिल-तिल कर तप्त लोह तवों पर जलती हुई बालुका तथा उबलते हुए तेल के कड़ाहों में होम हो जाने के पश्चात् भी उनकी आत्मा की अमरवाणी आज तक गूंजती हुई मृतप्राय प्राणियों में भी नवप्राण संचार करने में समर्थ है।

सिख सम्प्रदाय के जिस विशाल भवन का शिलान्यास गुरु नानकदेव ने किया और जिसका कलश गुरु गोविन्दसिंह द्वारा स्थापित किया गया और उसकी उसारी में स्वयं अपने आप को ही चुनवा देने वाले पंचम गुरु श्री अर्जुनदेवजी का महत्त्व बहुत बड़ा है। वे सिख जाति में बलिदानों की परम्परा के आदिप्रेरक कहे जा सकते हैं।

भारत की धर्म परम्परा को उनकी तीन महान् देनें हैं—श्री गुरु ग्रन्थ साहब जैसे महान् आध्यात्मिक ज्ञान भण्डार का सम्पादन, अमृतसर नगर का महत्त्वपूर्ण निर्माण एवं विकास तथा उनकी तीसरी देन बड़ी महान् है—धर्म रक्षा के लिए स्वयं अपने आप को बलिदान कर देना।

एक महान् कवि, कलाकार, संत एवं धर्म नेता होते हुए भी गुरुजी अत्यन्त विनयशील थे। वे कहते हैं—

पहिला मरण कबूल करि, जीवण की छडि आस।
होहु सभना की रेणुका तउ आउ हमारे पास।।

ब्रह्म प्राप्ति के लिए जीव को पहले अपने तुच्छ अहंभाव को त्यागना पड़ता है, उसे सभी के चरणों की धूलि बनना पड़ता है, जीते-जी मरण स्वीकार कर मरजीवा बनना पड़ता है। वे अन्यत्र कहते हैं—

जै तैनूं प्रेम खेलन दी चाह,
सिर धर तली गली मेरी आ।

एक बार गुरु नानकदेवजी के ज्येष्ठ पुत्र श्रीचंदजी ने गुरु अर्जुनदेवजी की लम्बी दाढ़ी देखकर पूछा कि आप ने इतनी लम्बी दाढ़ी किसलिए रखी हुई है? वे मुस्करा कर बोले, 'आप जैसे संतों की चरण रज साफ करने के लिए।'

भौतिकवाद की अग्नि ज्वाला में जलते हुए मानवों को गुरुजी का संदेश है—

सगल सृष्टि को राजा दुखिया।
हरि का नाम जपत होइ सुखिया।।
अनिक माया रंग तिख न बुझावै।
हरि का नामु जपत आघावै।।

हरि स्मरण के बिना जीवन वृथा है। गुरुवाणी गूंज रही है—

बिनु सिमरन दिनु रैनि वृथा बिहाइ।
मेघ बिना जिऊं खेती जाइ।
गोविन्द भजन बिन वृथे सब काम।
जिऊं किरपन के निरारथ दाम।।

कवि गुरु की क्रान्त-दृष्टि ने पहचान लिया था कि एक ईश्वर ही सब जीवों का पिता है तथा सारी सृष्टि उसी की सन्तान है—

तू ठाकुर तुम महि अरदासि।
जीउ पिंडु सभु तेरी रासि।।

तुम मात पिता हम बारिक तेरे।
तुमरी कृपा महि सूख घनेरे।
कोई न जानै तुमरा अंतु।
ऊँचे ते ऊँचा भगवन्त।।

सगल समग्री तुमरै सूतर धारी।
तुम ते होइ सु आगिआकारी।।
तुमरी गति मिति तुम ही जानी।
नानक दास सदा कुरबानी।।

अपने प्रभु को अनन्य भाव से आत्म-समर्पण करते हुए गुरुजी गा उठते हैं—

तू मेरा सखा तू ही मेरा मीतु। तू मेरा प्रीतम तुम संगि हीतु।
तू मेरा पति तू है मेरा गहणा। तुझ बिनु विमखु न जाइ रहणा।
तू मेरे लालन तू मेरे प्राण। तू मेरे साहिब तू मेरे खान।
जिउ तुम राखहु तिउ ही रहना। जो तुम कहहु सोइ मोहि करना।।

वेदान्त की महान् शिक्षा के अनुसार गुरुजी सच्चा पण्डित उसे ही मानते हैं जो अपनी आत्मा में ही ब्रह्म के दर्शन करता है—

सो पण्डित जो मनु परबोधे। राम नाम आतम महि सोधै।
राम नाम सारू रसु पीवै। उस पंडित के उपदेश जग जीवै।।

बहुत कम लोगों को ज्ञात है कि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में गुरु अर्जुनदेवजी द्वारा रचित एक 'सहस्रनामा' भी है जो महाभारत के विष्णु सहस्रनाम के आधार पर भगवान् के अनेक सगुण तथा निर्गुण नामों की बड़ी मनोहारी स्तुतियों की पावन मालिका है—

अचुत पारब्रह्म परमेसुर अंतरजामी।। मधुसूदन दामोदर सुआमी।।
रिखी केस गोवरधन धारी मुरली मनोहर हरि रंगा।।1।।

मोहन माधव कृस्न मुरारे।। जगदीसर हरि जीउ असुर संघारे।।
जगजीवन अविनाशी ठाकुर घट घट वासी है संगा।।2।।

धरणीधर ईस नरसिंघ नारायण।। दाड़ा अग्रे पृथमि धराइण।।
बावन रूप कीआ तुधु करते सभही सेती है चंगा।।3।।

स्री रामचन्द्र जिसु रूप न रेखिआ।। वनमाली चक्र पाणि दरसि अनूपिआ।।
सहस नेत्र मूरति है सहसा इकु दाता सभ है भंगा।।4।।

भगति बछलु अनाथह नाथे।। गोपीनाथु सगल है साथे।।
वासुदेव निरंजन दाते बरनि न साकउ गुण अंगा।।5।।

मुकंद मनोहर लखमी नाराइण।। द्रोपती लज्जा निवारि उधारण।।
कमला कंत करहि कंतूहल अनद बिनोदी निह संगा।।6।।

अमोघ दरसन आजूनी संभउ।। अकाल मूरति जिसु कदे नाही खउ।।
अबिनासी अविगत अगोचर सभु किछु तुझही है लगा।।7।।

स्री रंग बैकुंठ के वासी।। मछु कछु कूरमु आगिआ अउतरासी।।
केसव चलत करहि निराले कीता लोड़हि सो होइगा।।8।।

निराहारी निरवैरु समाइआ।। धारि खेलु चतुरभुज कहाइआ।।
सावल सुन्दर रूप बणवहि वेणु सुनत सभ मोहैगा।।9।।

बनमाला विमूखन कमल नैन।। सुन्दर कुण्डल मुकट बैन।।
संख चक्र गदा है धारी महासारथी सतसंगा।।10।।

पीत पितंबर त्रिभवण धणी।। जगनाथु गोपालु मुखि भणी।।
सारिंगधर भगवान बीठुला मै गणत न आवै सरबंगा।।11।।

निहकंटकु निहकेवलु कहीरे।। धनंजै जलि थलि है महीरे।।
मिरत लोक पइआल समीपत असथिर थानु जिसु है अभगा।।12।।

पतित पावन दख भै भंजनु।। अहंकार निवारणु है भवखंडनु।।
भगती तोखित दीन कृपाला गुणे न कितही है भिगा।।13।।

निरंकारु अछल अडोलो।। जोति सरूपी सभु जगु मउली।।
सो मिलै जिसु आपि मिलाए आपहु कोइ न पावैगा।।14।।

एक भक्त मियां मीर उनसे प्रायः पूछता रहता था कि क्या उनके 'सुखमनी' सन्देश के अनुसार कोई प्रत्यक्ष जीवन बिता सकता है। अंतिम समय में उसने देखा कि तप्त तवों पर गुरुजी का पावन देह तिल-तिल कर के जल रहा है, किन्तु गुरुजी मुस्कराते हुए गा रहे हैं—

तेरा भाणा मीठा लागै, हरि नाम पदारथ नानक मांगै।।

मियां मीर अवाक् रह गया। गुरुजी ने कहा—'मियां मीर! मैं अपने प्रत्यक्ष जीवन को होम कर 'सुखमनी' पर भाष्य कर रहा हूँ–तेरा भाणा मीठा लागै। हरि नाम पदारथ नानक मांगै।'

आत्मा-परमात्मा की अभेदता का निरूपण करते हुए उन्हीं आत्मदर्शी निर्लिप्त संत ने लिखा है—

आपे गोपी आपे काना। आपे गऊ चरावै बाना।
आप उपावहि आपि खपावहि तुधु लेप नहीं इक तिलु रंगा।।

वह परम ज्योति स्वयं गुरु अर्जुनदेवजी के रूप में अवतरित हुई। स्वयं आनन्द विभोर हो कर आत्म गीत गाती रही तथा स्वयं बलिदान की अश्रु प्रेरक रोमांचकारी लीला कर के स्वयं अपने आपमें ही लीन हो गई। उसी ज्योतियों की ज्योति को हमारे वंदना-व्याकुल हृदयों की कोटि-कोटि श्रद्धांजलियाँ सादर समर्पित हों।

दीने मुहम्मदी का बेबाक[1] बेड़ा[2], न जेजों में[3] ठैरा न कुलजममें[4] अटका।
किये जिसने तै चलके सातों समुन्दर, वह डूबा दहाने में गंगा के आखिर।।

1. निर्भय
2. नौका
3. एक नदी का नाम
4. एक समुद्र का नाम।

ब्रह्म संगीत के अमरगायक गुरु तेगबहादुर

भारत ऋषियों एवं महात्माओं का देश है। उन निर्लिप्त सन्तों तथा अवतारी महापुरुषों का, जिन्होंने समय-समय पर अध्यात्म विकास की इस वाटिका, भारत भूमि पर प्रकट होकर लड़खड़ाती हुई दुर्बल मानवता को जीवन के चरम ध्येय का पुनर्स्मरण कराया। सिख सम्प्रदाय के नवम गुरु श्री तेगबहादुर जो प्रत्येक भारतीय किंवा प्रत्येक मानव के लिये भी गुरु तुल्य हैं, पावनता, प्रेम, भक्ति एवं वैराग्य के मूर्तिमान देवता थे, जिन्होंने अपने अमर बलिदान द्वारा इस महादेश की जीवनधारा एवं विचारधारा, दोनों पर एक अमिट प्रभाव अंकित कर दिया। गीता एवं उपनिषदों का अमर सन्देश उनकी विमल वाणी में छलक रहा है तथा वे भारतीय संस्कृति के उस अमर तत्त्व के सजीव अवतार थे जिसकी प्रशस्ति में स्वयं योगेश्वर श्रीकृष्ण ने गाया—'न हन्यतै हन्यमानै शरीरे।'

कोई आत्मज्ञानी ही हंसते-हंसते प्राण होम कर सकता है क्योंकि वह जानता है कि उसका आत्मा अजर-अमर अविनाशी है तथा विश्व के प्राणीमात्र को भयभीत करने वाली मृत्यु की विकराल छाया यदि उसे स्पर्श कर बैठे तो वह मृत्यु स्वयं मर जायेगी, किन्तु ब्रह्मवेत्ता अमृतजीवी आत्मा का बाल भी बांका न होगा।

अमृतसर में सम्वत् 1687 में जिस अमृत पुत्र का अवतरण हुआ उसे बहुत समय तक संसार ने पहचाना ही नहीं। अन्त में उनके एक भक्त ने बाबा बकाला में 'गुरु लाधो रे, गुरु लाधो रे' का घोष करते हुए उन के प्रकट होने की घोषणा की। सतलुज नदी के तट पर स्थित आनन्दपुर साहब नगर का दर्शन कर मैं कृतकृत्य हुआ। गुरु तेगबहादुरजी का बसाया हुआ यह नगर उनकी अलौकिक अक्षुण्ण कीर्ति का एक लौकिक स्मारक है। वहाँ जमीन से 8 फीट नीचे खाईनुमा मोरे बने हुए हैं। जहाँ गुरु तेगबहादुरजी अनेक वर्षों तक एकांत में तप करते रहे। वहीं गुरुद्वारा सीसगंज है जहाँ गुरु गोबिन्दसिंह जी ने अपने पिता के शीश का अन्तिम संस्कार किया।

दिल्ली के चांदनी चौक के सीसगंज गुरुद्वारे के स्थान पर ही गुरु तेगबहादुरजी का बलिदान हुआ। उसके सामने ही चांदनी चौक का फव्वारा है जहाँ कभी बन्दा

बैरागी के खून का फव्वारा चला था। इस ऐतिहासिक स्थान से मैं कभी भी अपने सजल नयनों से इन बलिदानी वीरों को अश्रुमाल चढ़ाए बिना नहीं गुजर सका। हिन्दू जाति की रक्षा के लिए अपने प्राण न्योछावर करने वाले उस महान् गुरु की प्रशस्ति में हृदय स्वयमेव गाने लगता है—

इन्द्रप्रस्थे पुकराकाले, चांदनी चौकांतरैकदा,
गुरु वर तेगबहादुर, धमार्थे स्व बलिं ददात्।

गुरु तेगबहादुर से पहले 29 नवम्बर, 1675 के दिन, उनके बलिदान से केवल 3 दिन पूर्व, गुरुप्रवर के दो साथियों को भी धर्म हित हुतात्मा बनना पड़ा। एक थे स्वर्गीय भाई परमानन्दजी के पूर्वज भाई मतिदासजी जिन्हें चांदनी चौक के बीच में आरों से सिर से पैर तक चीर डाला गया। दूसरे भाई दयाला को उबलते हुए तेल के कड़ाहे में डाल कर भून डाला गया। गुरु महाराज ने शीर्ष बलिदान के समय गले पर एक कागज बांध रखा था। शीर्ष कटने के पश्चात् उसे खोला गया, उस पर लिखा था 'सिर दिया पर सार न दिया' अर्थात् सीस देकर भी धर्म के मान को बचा लिया। स्वयं गुरु गोविन्दसिंह ने कहा—

तिलक जंजू राखा प्रभु ताका
कीनों बड़ो कलू में साका।

अपने बलिदान की घड़ी में दिल्ली के रोते हुए नर-नारी को महान् बलिदान वीर ने अंतिम संदेश दिया—

संग सखा सब तज गए, कोई न निभयो साथ
कहु नानक इस जगत में, एक टेक रघुनाथ।

वे अन्यत्र कहते हैं—

सभ सुखदाता राम है, दूसर नाहिन कोई
कहु नानक सुनि रे मना, तिह सिमरन गति होई।।

वैराग्य

इन तपोपूत संत की वाणी में संसार के वैराग्य का संदेश गूंज रहा है—

जो उपजे सो बिनस है, पड़ो आज के काल,
नानक हरि गुण गाय ले, छोड सकल जंजाल।

भक्ति

उस हरि, राम, गोविन्द को गाने मात्र से सारे संकट मिट जाते हैं—

राम राम उर में गहो, जाके सम नहीं कोय।
जिह सुमिरत संकट मिटे, दरस तिहारो होय।।

मिलन की व्याकुलता

सच्चा भक्त भगवान् के बिना ऐसे तड़पता है जैसे पानी बिना मछली।

गुरु गोविन्द गाइओ नहीं, जनमु अकारथु कीन।
कहु नानक हरि भजु मना, जिहि विधि जल कौ मीन।।

स्थितप्रज्ञ

साक्षात् गीता के स्थितप्रज्ञ के लक्षण बताते हुए वे कहते हैं—

साधो! मन का मान तियागो, काम क्रोध संगत दुर्जन की
तातें अह निशि भागो, साधो! मनका मान तियागो।।

पुनः

सुख दुखु जिह परसै नहीं, लोभ मोह अभिमान।
कहु नानक सुनि रे मना, सो मूरत भगवान्।
उसतति निंदिआ नाहिजिहि, कन्चन लोह समानि।
कहु नानक सुनि रे मना, मुक्ति ताहि तै जानि।
हरख सोग जा कै नहीं, वैरी मीत समानि।
कहु नानक सुनि रे मना, मुकति ताहि तै जानि।
भै काहु कउ देत नहिं, नहिं भै मानत आनि।
कहु नानक सुनि रे मना, गिआनी ताहि बखानी।

नर में नारायण

एक रहस्यदर्शी वेदान्ती के समान गुरु तेगबहादुर मानव को पुनः याद दिलाते हैं—

काहे रे बन खोजन जाई।
सर्व निवासी सदा अलेपा।
तोही संग समाई।।
पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है
मुकुर माही जस छाई।
तैसे ही हरि बसै निरन्तर,
घट में खोजो भाई। काहे....

अन्तर और बाहर में वही तत्त्व समाया हुआ है—

बाहर भीतर एके जानो,
यह गुरुज्ञान बताई।

कहो नानक बिन आपा चीह्ने
मिटे न भ्रम की काई
काहे रे बन खोजन जाई।

वह प्रभु सदा हमारे साथ ही है—

पतित उधारन भय हरन, हरि अनाथ को नाथ।
कहु नानक तिह जानीए सदा, बसतु तुम साथ।

वह नारायण घट-घट का वासी है—

घटि घटि मैं हरि जू बसै, संतन कहिओ पुकारि।
कबहु नानक तिहु भजु मना भउनिधि उतरहि पारि।

गुरु तेगबहादुर ने उस परम सत्य का अपने भीतर ही साक्षात्कार कर लिया था, अपने घट में ही ब्रह्म को पा लिया था। अतः वे ब्रह्मभूत महात्मा अत्याचारी मुगल शासकों के अत्याचार का उपहास करते हुए युग-युग तक अजर-अमर रहेंगे तथा उनका पावन नाम यश के अमर तरानों में सदा-सर्वदा गूंजता रहेगा।

जयतु जयतु गुरुतेग, धन्य बलिदान धृति
जयतु धर्म हिन्दुत्व, जयतु तव पुण्य स्मृतिः।
जयतु दिल्ली नगरस्थ शीर्षगंज गुरुद्वार
जयतु कीर्ति बलिदान-धवल यश अमर सदा।

'यहीं तो हमारी जाति के अन्तिम तथा सर्वाधिक तेजस्वी वीरों में से एक, गुरु गोविन्द सिंह उदय हुए। वे महान् गुरु, धर्म के हेतु, दलितों के उद्धार हेतु अपना तथा अपने निकटतम स्वजनों का रक्त बहाने के पश्चात्, जब उन्हीं लोगों द्वारा उत्पीड़ित तथा परित्यक्त हुए जिनके हेतु यह रक्त बहाया गया था, तब वे विरक्त होकर, बिना अपने देश तथा समाज के विरुद्ध एक भी शब्द बोले, बिना असन्तोष का एक भी वचन कहे, दक्षिण में चले गये।

भारत के पुनर्गौरवीकरण के लिए आप में से प्रत्येक को गुरु गोविन्दसिंह बनना होगा, उनका सच्चा अनुयायी बनना होगा।'

दशमेश गुरु का अलौकिक भक्ति काव्य

इस धर्मभूमि भारत में धर्मरक्षार्थ सर्वस्व न्योछावर करने वाले बलिदानी-वीरों में दशमेश गुरु श्री गोविन्दसिंहजी का नाम सदा-सर्वदा के लिए अत्यन्त आदर एवं गौरव के साथ लिया जावेगा। आधुनिक पंजाब के विकृत वातावरण में गुरु गोविन्दसिंह जी का पावन चरित्र पंजाब की धरती के किंवा सारे भारत के लालों को कर्तव्य का आलोक पथ दिखाने के लिए ज्योति स्तम्भ के समान है। विश्व विजेता स्वामी विवेकानन्द ने अपनी 'कोलम्बो से अलमोड़ा' भाषणमाला में कहा कि सच्चा हिन्दुत्व का मूर्तिमन्त अवतार है तो गुरु गोविन्दसिंह, सच्ची भारतीयता का कोई इतिहास सुलभ आदर्श है तो गुरु गोविन्दसिंह। पंजाब, जहाँ एक ओर सन्तों-महात्माओं की धरती है, वेदों-उपनिषदों तथा गीता की धरती है। वहाँ वह दूसरी ओर विश्वविख्यात वीरों की धरती भी है। उसकी नदियाँ अभी तक भीम, अर्जुन, द्रोण, कृप, चन्द्रगुप्त, चाणक्य, बन्दा वैरागी, रणजीतसिंह, हरिसिंह नलवा के यश गाती हैं। पंजाब ने सन्त एवं सेनानी का इतिहास दुर्लभ समन्वय कर के गुरु द्रोणाचार्य से गुरु गोविन्दसिंह तक महान् कर्मयोगियों तथा अध्यात्म शूरों की एक लम्बी परम्परा का निर्माण किया है। पंजाब की ही धरती पर कुरुक्षेत्र की रणस्थली में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा था—**'मामनुस्मर युध्य च'** अर्थात् हे अर्जुन! तू निरन्तर मुझे स्मरण भी करता रह और संग्राम भी करता जा। बिल्कुल इसी भाव को दर्शाते हुए गुरु गोविन्दसिंह ने गाया—

धन्य जिओ तिंह को जग में,
मुख ते हरि चित्त में युद्ध विचारे।

खालसा का उद्देश्य

त्याग, यज्ञ और बलिदान ही भारतीय संस्कृति का सार-सर्वस्व है। उसी बलिदान के निकष पर परख कर खूनी तलवार की भयावनी चुनौती के नीचे गुरु ने पाँच प्यारे चुने। वे मरजीवे अपने आप को धर्म की बलिवेदी पर चढ़ा चुके थे। गुरुवाणी में कहा है—

जै तैनूं पीव मिलन दी चाह,
सिर धर तली गली मेरी आ।

वे पाँच प्यारे अपनी तली पर अपना शीश रखकर ही आए थे। गुरु ने उन्हें अमृत छकाया तथा स्वयं भी उनके हाथ से अमृत छका। आनन्दपुर साहब में खालसा पन्थ का निर्माण करते हुए गुरु गोविन्दसिंह ने घोषणा की—

सकल जगत में खालसा पन्थ गाजे,
जगे धर्म हिन्दुन, सकल धुन्ध भाजै।

स्पष्ट है कि हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए, इसी देश के अनादि धर्म की जागृति के लिए ही गुरु महाराज ने सशस्त्र सेनानियों का प्रबल दल 'खालसा' सजाया तथा इसी हेतु उन्होंने अपने पूज्यपिता व अपने चारों लाडलों तथा स्वयं अपना भी बलिदान दिया।

आज पंजाब के दूषित वातावरण में कुछ पथ भ्रष्ट धर्म नेताओं ने गुरु गोविन्दसिंह की असली वाणी 'दशम ग्रन्थ' के पठन-पाठन को गुरुद्वारों में बन्द कर रखा है। इसी कारण आज का सामान्य सिक्ख अपने सम्प्रदाय का वास्तविक हेतु ही नहीं जानता।

गुरुजी हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए इतने आतुर थे कि उन्होंने भगवती दुर्गा की उपासना करके एक महान यज्ञ रचाया और वहीं पर खालिस आर्य वीरों का एक सम्प्रदाय निर्माण किया। उनका आह्वान है—

जे आरज तू खालस होवे।
हंसहंस सीस धर्महित खोवे।

स्वयं अपने पिता गुरु तेगबहादुर के बलिदान के विषय में गुरु गोविन्दसिंह लिखते हैं—

तिलक जंजू राखा प्रभु ताका।
कीन्हा बड़ा कलू में साका।
साधन हेतु इति जिन करी।
सीस दिया पर सी न उचरी।

गुरुजी के विवाह के समय उन्होंने स्वयं यज्ञोपवीत पहना हुआ था।

पीत मुनीत उपरना धोती जोती रवि नव छाजे।
पीत अनेऊ मनोबदन ससि पे बिजुरी भ्रांजे।

धर्म रक्षा के लिए गुरुजी शिवा भवानी से प्रार्थना करते हैं—

देहु शिवा वर मोहि इहै, शुभ कर्मन ते कबहूँ न टरूं।
न डरुं अरिसे जब जाय लरुं, निश्चय कर अपनी जीत करुं॥

गुरु गोविन्दसिंह की काली माता पर अपार श्रद्धा थी। वह प्रायः गाते थे—

काल तुही, काली तुही, तुही तेग अरुतीर,
तुही निशानी जीतकी, तुही आज जगवीर।

गो-ब्राह्मण रक्षा

गुरु महाराज का गो-रक्षा का व्रत उनकी ही अपनी वाणी में सुनिए—

यही देह आज्ञा, तुर्क खपाऊं,
गऊ घात का दोख, जग सों मिटाऊं,
यही आस पूरण करौ तुम हमारी,
मिटै कष्ट गौअन, छूटै खेद भारी।

अवतारवाद

हिन्दू धर्म-शास्त्रों के समान गुरु गोविन्दसिंह भी अवतारवाद के पोषक थे। अपने निम्न पद में तो उन्होंने गीता के 'यदा यदा हि धर्मस्य' श्लोक का भावानुवाद ही प्रस्तुत कर दिया है—

जब जब होत, अरिष्ट अपारा,
तब तब देह धरत करतारा।
आपन रूप अनन्तन धरहीं,
आपन मध्यलीन पुनि करहीं।

राम महिमा

इस राम और कृष्ण के देश में गुरु गोविन्द जैसे महान् देशभक्त एक संस्कृति रक्षक राम का विरुद गाए बिना कैसे रह सकते थे। अपने दशम ग्रंथ में उन्होंने रामायण को अपनी सुन्दर मधुर काव्यमयी भाषा में गाया है। रामायण कथा के अंत में गुरु गाते हैं—

राम कथा जुग जुग अटल,
सब कोउ भाखत नेत।
स्वर्गवास रघुवर किया,
सगली पुरी समेत।।
जो यह कथा सुने अरु गावे,
दुखपाप तट निकट न आवै।
विष्णुभक्त को यह फल होई,
आधि-व्याधि छू सके न कोई।।

कृष्ण स्तुति

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द की विरुदावली गाने में तो गुरु गोविन्दसिंह कहीं-कहीं सूर, मीरा, रसखान के लोलित पदों के समान लोलित भावों को गाते हैं—

जो उपमा ब्रजनाथ की गाइ हैं,
और कवित्त न बीच घरैंगे,
पापन के तेउ पावन में,
कवि शाम भनै, कबहू न जरैंगे।
चिन्त सभैं मिटहै जु रही,
छिन में तिनके अघवृन्द टरैंगे।।
जो नर श्यामजुके परसे पग,
ते नर फेर न देह धरैंगे।।

भगवान् कृष्ण की रूप माधुरी का वर्णन करते हुए गुरुजी लिखते हैं—

मुख जाहि निशापति के सम है,
वन में तिन गीत रिझयो अरु गायो।
ता सुर की धुनि निज स्रउवन में,
ब्रजहूं की त्रिया सब ही सुनि पायो।
धाई चली हरि के मिलिबे कहुं,
प्रिय श्याम सबहिं मन में जब भायो।
श्री कान्ह मनो मृगना जुबती,
धोकवे कहुं घंटक हेर बनायो।

गुरुजी ने रास लीला का कला रुचिर वर्णन कितने सुन्दर शब्दों में किया है—

जब आई है कातक की रुत सीतल,
कान्ह तबै अति ही रसिया।
संग गोपन खेल विचार करयो,
जो हुतो भगवान् महा जसिया।
अपवित्रन लोगन के जिह के पग,
लागत पाप सबै नसिया।
तिह को सुनि तिरियन के संग खेल,
निबारहु काम रहै बसिया।

उस लीला पुरुषोत्तम की लीला के दर्शन मात्र से सब काम का निवारण हो जाता है।

दशम ग्रन्थ में गुरु गोविन्दसिंहजी कृत मुरली महिमा से प्रकृति भी आनन्द रस से आप्लावित हो रही है—

रुखन ते रस चूवन लाग,
झरै झरना गिरिते सुखदाई।
घास चुगैन मृगा बन के,
खग रीझ रहे, धुन जासुन पाई
देव गंधार विलावल सारंग की
रिझ के जिह तान बजाई।
देव सभै मिल देखता कौतक,
ज्यौं मुरली नन्दलाल बजाई।।

दशम गुरु भगवती दुर्गा की स्तुति करते हुए लिखते हैं—

नमो उग्रदन्ती अवंती सवैया,
नमो जोग जोगेश्वरी जोग मैया।
नमो केहरी वाहिनी शत्रुहंती,
नमो शारदा ब्रह्म विद्या पढ़ंती।
नमो ऋद्धिदा, सिद्धिदा बुद्धिदेनी,
नमो काल के काल की कालछैनी।
नमो ज्योति ज्वाला तुम्हें वेद गावें,
सुरासुर ऋषीश्वर नहीं भेद पायें।।

भारतीय संस्कृति के अमर गायक भक्त शिरोमणि गुरु गोविन्दसिंह के जन्म दिवस पर क्या हमारी हृदय वीणा के तारों पर उनका मधुर भक्ति-संगीत ध्वनित होकर हमारे देश तथा प्रदेश में भक्ति एवं प्रेम की मधुर स्रोतस्विनी बहा सकेगा!

16 जनवरी 1959
दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

अमर बलिदानी बन्दा वैरागी

मातृवेदी पर प्राण अर्पण कर वीर पुरुष जिस अमरता को प्राप्त करते हैं वह अतुलनीय है। वीरों का शरीर तो नष्ट होकर पंचतत्त्वों में मिल जाता है लेकिन उनका यश उन्हें सदा-सदा के लिए अजर-अमर एवं पूज्य बना देता है। वीर प्रसूता भारत भूमि में सदा से ही अनेकानेक महापुरुषों ने अपने अनुपम कृत्यों एवं बलिदानों द्वारा भारत के मस्तक को ऊँचा किया है। वीर बन्दा वैरागी भी इसी वीर परम्परा के अन्तर्गत आते हैं। जिन्होंने अपने शरीर को सारहीन जान अपना जीवन देश-धर्म रक्षार्थ अर्पण कर जीवन सार्थक किया।

भारत के गौरवमय इतिहास में यूं तो अनेकानेक महापुरुषों के नाम आते हैं जिन्होंने स्वदेश स्वातंत्र्य के लिए जीवनाहुति दी या घोर तपस्या करके अमर तत्त्व लाभ किया लेकिन यदि कहीं वैराग्य और कर्म का अद्भुत सामंजस्य है तो बन्दा वैरागी में। यदि किसी वैरागी ने हाथ में तलवार लेकर शत्रुमर्दन किया है तो बन्दा वैरागी ने। छत्रपति शिवाजी बचपन से ही देश प्रेम की भावना से ओतप्रोत थे, महाराणा प्रताप प्रारम्भ से ही देश की स्वाधीनता के लिए मर मिटने को कटिबद्ध थे। महात्मा बुद्ध व गुरुनानकजी बाल्यकाल से ही विरक्त थे लेकिन नन्हा वैरागी प्रारम्भ में एक सुप्रसिद्ध शिकारी था लेकिन हिरणी के शिकार के समय उसके गर्भ स्थित दो बच्चों का वध हो जाने की घटना से प्रभावित हो पूर्णतया वैरागी बन गया। सबकुछ त्याग जंगल में एक कुटिया बना कर एक साधु के शिष्यत्व में योग तपस्या करने लगा लेकिन जब गुरु गोविन्दसिंह जी के दो लाडले अपने नन्हे पुष्प जीवन मातृवेदी पर अर्पण कर अमरलोक सिधारे उस समय गुरुजी किसी साथी की खोज में अन्यमनस्क भाव से चलते-चलते उस स्थान पर जा पहुँचे जहाँ वैरागी अपनी साधना में लीन था। गुरुजी ने बन्दा को योग छोड़ कर्तव्य मार्ग अपनाने के लिये कहा और अपने पुत्रों व गुरु तेगबहादुरजी के बलिदान का वृत्तांत कह सुनाया। बन्दा वैरागी की योग निद्रा टूटी और देश-प्रेम, जाति प्रेम उस वीर की धमनियों में हिलोरें लेने लगा। गुरु गोविन्दसिंहजी ने प्रसन्न होकर अपनी खड्ग वीर बन्दा वैरागी को देते हुए कहा—

यह लो अमर कटारी यवनों के लोहू से स्नात।
अब निश्चय मैं देख रहा हूं भारत का अरुण प्रभात।।

गुरु गोविन्दसिंहजी का कथन अक्षरशः सत्य निकला। वीर बन्दा वैरागी गुरुजी की पवित्र खड्ग हाथ में ले घोड़े पर सवार हो कर्तव्य क्षेत्र में कूद पड़ा और क्रूर मुगलों की नृशंसता का बदला लिया। उन पापियों को जिन्होंने गुरुजी के लाडलों को दीवारों में चुनवाया था अपनी अमर कटारी से समाप्त कर दिया।

बन्दा दक्षिण भारत से पंजाब में आए, गुरु गोविन्दसिंहजी अब अस्वस्थ हो चुके थे, बन्दा ने सिख शूरों को उत्साहित व एकत्र किया और लाहौर पर आक्रमण कर दिया। मुसलमानों ने द्वेषवश बन्दा को अनेक प्रकार से लांछित करने का प्रयत्न किया। वे उन महापुरुष को क्रूर जादूगर और न जाने क्या-क्या कहते थे लेकिन उन्हें भी स्वीकार करना पड़ा कि बन्दा लोकोत्तर शूर थे। बन्दा के धनुष से छूटे बाण कभी लक्ष्यच्युत नहीं होते थे।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को कर्तव्य पथ अपनाने के लिए जिस स्थितप्रज्ञ पुरुष की व्याख्या की है उसका साक्षात् उदाहरण बन्दा वैरागी थे जो सदा ही वैरागी रहे, वे प्रायः युद्धभूमि के समीप एक पहाड़ी पर ध्यानस्थ बैठे रहते। उनका स्वभाव निरन्तर एकांत में ध्यान करने का था लेकिन जब युद्ध में शत्रु बलवान आ पड़ते तब सिख सेना के नायक उनको ढूंढ़ते। बन्दा अपने अश्व पर बैठकर तूफान की भांति आते थे और विपक्ष के प्रधान-प्रधान नायकों को अपनी खड्ग का शिकार बनाने के पश्चात् जैसे ही वे समझते कि अब मेरी आवश्यकता नहीं, वे लौट पड़ते और इस प्रकार दूर जाकर ध्यानस्थ हो जाते जैसे कोई घटना ही नहीं हुई हो। बन्दा सचमुच महारुद्र की भांति समरक्षेत्र में आते थे और आंधी की भांति सहसा अदृश्य हो जाते थे।

दिल्ली सम्राट बहादुरशाह प्रथम ने स्वयं सेना लेकर बन्दा का सामना किया और उन्हें पकड़ कर वह लोहे की जंजीरों में बांध हाथी पर ले जा रहा था। बड़ी कठिनता से छलपूर्वक बादशाह बहादुर शाह ने उस सिंह को बांधा था। महायोगी बन्दा ने अपने को संभाला। प्राणों को स्थिर किया और सुदृढ़ श्रृंखलायें खण्ड-खण्ड हो गईं। किसी के सावधान होने से पूर्व बन्दा ने समीप के यवन सैनिक को घोड़े से भूमि पर फेंक दिया। उसकी तलवार लेकर अश्वपीठ पर बैठ गए। बन्दा का सामना कौन कर सकता था? वीर बन्दा ने अपने सभी बन्दी साथियों को अकेले मुक्त कर लिया।

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण द्वारा वर्णित निष्काम कर्मयोग का यदि कहीं सुन्दरतम आदर्श मिल सकता है तो बन्दा वैरागी से। वीर बन्दा वैरागी के नेतृत्व में सिख सेना ने अनेक बार यवन दुर्गपतियों को परास्त किया। अनेक बार अपार सम्पत्ति उनके हाथ लगी। कई बार सेना नायकों ने अनुभव किया कि उन्हें बन्दा का स्थायी नेतृत्व प्राप्त हो जाए तो एक अजेय सिख साम्राज्य स्थापित हो सकता

है। अनेक बार उन सरदारों ने बन्दा से अनुरोध किया कि विजय में मिले धन को बन्दा वितरित न करके स्वयं स्वीकार करे और विजित दुर्गों पर अधिकार करके अधिपति बने लेकिन बन्दा तो वैरागी थे और उनका यही उत्तर था—'मैं वैरागी हूँ और गुरु का बन्दा हूँ, मुझे धन और राज्य से क्या करना है?' वास्तव में बन्दा महान् वैरागी थे, विजय में मिले धन को कभी छुआ तक भी नहीं, यहाँ तक कि उनकी निजी आवश्यकताओं का भी दूसरों को ध्यान रखना पड़ता था। उनकी पत्नी तथा पुत्र का भरण-पोषण उस धन से होता था जो सरदार लोग स्वेच्छा से उनकी पत्नी को दे जाते थे।

मुगलशासक बन्दा के नेतृत्व में सिखों द्वारा अपनी पराजय देख मन ही मन क्षोभ करते। अतः कोई सीधा ढंग न देखते हुए कूटनीति से काम लेना चाहा। दिल्ली के सिंहासनासीन फरुखसियर ने काश्मीर के सूबेदार अब्दुलसदमखां को बन्दा वैरागी के विरुद्ध ससैन्य भेजा। उसने सिख सरदारों के पास सन्देश भेजा। 'हमारी सिखों से कोई शत्रुता नहीं है सम्राट सिखों को उनके राज्य देने को प्रस्तुत हैं। हम तो केवल बन्दा को पकड़ना चाहते हैं। बन्दा सिख नहीं है, उसने सिखों को भड़का कर सम्राट् का द्रोही बना दिया है।' दूरदर्शी बन्दा ने देख लिया कि अब सिखों में बुद्धि-भेद उत्पन्न हो गया है। युद्ध में पूरा उत्साह नहीं दिखाते। विवश होकर बन्दा ने दुर्ग में आश्रय लिया। सदमखां अपनी भेदनीति के सन्देश भेजने में लगा रहा। सिखों ने बन्दा से पूछा कि वह सिख है या नहीं। बन्दा का उत्तर था, 'मैं गुरु का बन्दा हूँ, न इससे अधिक न कम।' सिखों ने शत्रु के बहकावे में आकर बन्दा को विधिपूर्वक धर्म स्वीकार करने के लिए कहा। लेकिन बन्दा का यही उत्तर था—धर्म ऊपर से स्वीकार नहीं किया जाता, वह हृदय से स्वीकार किया जाता है। मेरा धर्म कोई त्रुटि पूर्ण नहीं है और न कभी लौकिक कारण से मैं उसे बदलने को प्रस्तुत हूँ।' बन्दा के इस निर्भीक उत्तर को सुन सिख बन्दा से रुष्ट हो गए और बहुत से प्रधान नायक अपने दल के साथ दुर्ग छोड़कर निकल गए किन्तु झूठे मुगल शासक ने उन्हें पकड़ कर बड़ी निर्दयता पूर्वक मार डाला। वास्तव में बहुत थोड़े सिख थे जिन्होंने बन्दा को ठीक प्रकार से समझा और अन्त तक साथ दिया। किसी सैनिक ने शत्रु के बहकावे में आकर दुर्ग-द्वार खोल दिया। बन्दा और उनके 784 साथी पकड़ लिए गए। बन्दा को सिंह के पिजरे में बन्द करके हाथी पर दिल्ली भेजा गया।

सम्राट् के अनेक प्रलोभन सच्चे सिखों को अपने कर्तव्य पथ से विचलित न कर सके और उन वीरों ने परधर्म स्वीकार करने की अपेक्षा जीवन बलिदान स्वीकार किया। सात दिनों तक यही क्रम चलता रहा। प्रतिदिन सौ वैरागी सिख शूरों के सिर काटे जाते। धर्म के लिए मस्तक देना उन मनस्वियों को गौरव प्रतीत हो रहा था। विधर्मी के प्रलोभन उनके सामने तुच्छ सिद्ध हुए।

अन्त में 19 जून 1716 का वह मनहूस दिन आया जब कि वीर बन्दा शहर के बाहर लाए गए। बन्दा को भी अनेक प्रलोभन दिए गए और सेना के सेनापति पद को स्वीकार करने के लिए कहा गया। यह सब इस वीर पुरुष के सामने हेय था। क्रूरता से बन्दा के सम्मुख उसके इकलौते पुत्र को लाया गया और उसे मारने के लिए बन्दा से कहा गया। बन्दा ने स्पष्ट अस्वीकार कर दिया। पापी जल्लाद ने बन्दा के देखते-देखते ही बाल पुष्प की छाती फाड़ कर उसका कलेजा निकाल कर बन्दा के मुंह में ठूंस दिया। वे वैरागी अधो-उन्मीलित नेत्र किए मानो कुछ देख ही न रहा हो। बन्दा का वध करने से पहले एक बार फिर बन्दा से मुसलमान धर्म स्वीकार करने के लिए कहा गया लेकिन उस वीर का यही उत्तर था—'शरीर तो नाशवान है मुझे शरीर का कोई भय नहीं, मैं तो आत्मा हूँ, आत्मा सदा अजर-अमर है।' यह सुनते ही अत्याचारियों ने तपाई हुई लोहे की सलाखों से वैरागी को पीटा और जब उसका सारा शरीर झुलस गया तो गर्म चिमटों से उसका मांस नोचा। वीर बन्दा इतने पर भी मुसकरा रहे थे। किसी ने पूछा—'इतनी पीड़ा मिलने पर भी तुम कैसे प्रसन्न हो?' बन्दा ने कहा—'जो आत्मा के स्वरूप को पहचानता है वह इस बात को जानता है कि आत्मा अमर है तथा दुःखातीत है।' इस उत्तर से सभी चकित रह गए। वैरागी के मुख पर वेदना का चिह्न तक नहीं था। वे शरीर के संसर्ग से कब के परे हो चुके थे। अन्त में उनके शरीर को अत्याचारियों ने हाथी के पैरों तले दबाया। बन्दा सच्चे शहीद हो गए।

धन्य हैं वे वीर जिन की वीरता और मातृवेदी पर बलिदान होने की प्रबल आकांक्षा को देख कर मुसलमान इतिहासकार मि. लतीफ ने कहा है—

इन वीरों ने लापरवाही से मौत का स्वागत किया—यही नहीं अपितु परस्पर शहादत का अमृत पीने के लिए एक-दूसरे से आगे बढ़ कर उत्सुकता प्रकट करने लगे।

इतिहास के पृष्ठ आज भी मुगल शासकों की क्रूरता, निर्दयता और पाप को व देश-धर्म पर सर्वस्व न्योछावर करने वाले बांके रणवीरों का यशोगान कर रहे हैं। धर्म की रक्षा के लिए इन वीरों का यह बलिदान अमर है।

27 जून 1960 दैनिक
'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः

यह आत्मा-परमात्मा—बलहीन को प्राप्त नहीं होता।

—**वेद**

गो-ब्राह्मण व हिन्दू-धर्म के रक्षक : पंजाब के कोहेनूर—किरीट नृपति महाराजा रणजीतसिंह

जिस पत्थर के टुकड़े का मूल्य आज तक कोई न लगा सका, जिस की छवि-छटा पर मुग्ध हो बड़े-बड़े साम्राज्य लुट गए, जो हीरक भारत की कृष्णा नदी से निकला पर जिसका नामकरण विदेशी लुटेरे नादिरशाह ने किया, जो माणिक्य विश्व के अनेक देशों में हत्या, लूटमार एवं रक्तपात का कारण बना तथा जो आज भी सात समुद्र दूर इंग्लैंड की साम्राज्ञी रानी एलिजाबेथ के हीरक मुकुट में सुशोभित है, उस विश्व के सर्वाधिक मूल्यवान हीरे कोहेनूर को यदि भारत के किसी हिन्दू सम्राट ने कभी धारण किया तो वे पंजाब केसरी महाराजा रणजीतसिंह ही थे। रणजीतसिंह पंजाब के एक मात्र नृपति थे जिन्होंने उस अमूल्य हीरे को अपनी कलगी में धारण किया तथा वे अन्तिम भारतीय राजा थे जिनके किरीट से विलग होने के तुरंत पश्चात् कोहेनूर को भी काला पानी मिल गया। पिछले 159 वर्षों से विश्व का वह सब से कीमती हीरा अपने स्वदेश से हजारों मील दूर इंग्लैंड के राजमुकुट की कारा में बन्दी पड़ा हुआ स्वदेश दर्शन के लिए सिसक रहा है। दूरदर्शी रणजीतसिंह जानते थे कि यदि वह हीरक राज शक्तियों के हाथ आता-जाता रहा तो सदा ही मानवता के रक्तपात का कारण बनता रहेगा। उन्हें स्मरण था कि लुटेरे नादिरशाह ने उस पाषाण खण्ड को प्राप्त करने के लिए सन् 1739 में दिल्ली में किस प्रकार सर्वसंहार कराया था, जब 9 दिन के अविराम नरसंहार से दिल्ली के गली-कूचों में रक्त की नदियाँ बहने लगी थीं। नादिरशाह के हाथ लगने के पश्चात् 74 वर्षों तक फारस-अफगानिस्तान आदि देशों में देश निकाला भोगकर जब यह भारत का अमूल्य हीरक फारस के सम्राट् शाहशुजा के साथ सन् 1813 में भारत आया तो चतुर रणजीतसिंह ने अपने देश की खोई हुई दौलत को युक्ति से पुनः हथिया लिया था। कोहेनूर का मूल्य पूछने पर रणजीत कहा करते, 'पांच जूतियाँ' जिसका अर्थ यह है कि कोहेनूर जिस भी व्यक्ति अथवा राज्य के पास रहेगा वहाँ हत्या, लूटमार, रक्तपात की अपमानजनक घटनाएं सदा होती रहेंगी। एक पत्थर के निर्जीव टुकड़े के पीछे होने वाले इतने भीषण नरसंहार को देखकर रणजीतसिंह ने दूरदर्शिता की अपनी

एक ही चमकीली आंख से देख लिया था कि माया को मायापति महेश्वर के चरणों में अर्पण कर देने से ही यह संहार लीला समाप्त हो सकती है।

> *इसलिए मृत्यु शय्या पर पड़े हुए रणजीतसिंह ने अपनी अन्तिम इच्छा प्रकट की कि वह कोहेनूर हीरा जगन्नाथ पुरी के भगवान जगन्नाथजी के चरणों में चढ़ा दिया जाए। किन्तु इतिहास का विचित्र व्यंग्य यह है कि वह कोहेनूर हीरा आज भगवान् जगन्नाथ के चरणों पर न चढ़कर इंग्लैण्ड की महारानी एलिजाबेथ के शीर्ष पर चढ़ा हुआ भारतीयों के स्वाभिमान को चुनौती दे रहा है।*

पंजाब में महाराजा रणजीतसिंह का नाम अतिशय प्रेम एवं श्रद्धा का सूचक नाम है। पंजाब के स्वातंत्र्य एवं स्वाभिमान के लिए जीवन भर संग्राम करने वाले राजा अनंगपाल के पश्चात् पंजाब की जनता को रणजीतसिंह जैसा लोकप्रिय एवं प्रजावत्सल राजा अन्य नहीं मिला था। उस वीर शिरोमणि नृपति के राज्य में भारत की सेनाओं ने देश के पश्चिमोत्तर में दर्रा खैबर तक पहुँच कर उन बर्बर एवं आततायी लोगों पर शासन किया जो सदा से दूसरों पर शासन करने के आदी थे।

महाराजा रणजीतसिंह की विजयिनी सेनाएं उत्तर में काश्मीर की वादी से पार लद्दाख, वाल्टिस्तान तथा तिब्बत तक जा पहुँची तथा भारत शीर्ष को विदेशी आक्रमणों के भय से मुक्त कर दिया। यह महान् कार्य रणजीतसिंह को विश्व इतिहास में उनके योरपीय समकालीन सेनानायक नेपोलियन के तुल्य यश प्रदान करता है किन्तु जहाँ असम्भव को 'मूर्खों के शब्दकोश का शब्द' मानने वाले नेपोलियन को भी अंग्रेजों के हाथ पराजित होना पड़ा वहाँ अपनी कुशल राजनीति के कारण रणजीतसिंह अंग्रेजों के साथ संघर्ष से सदा बचते रहे।

महाराजा रणजीतसिंह न्यायशील और धर्मप्रिय शासक थे। प्रजा वत्सल राजा के सभी गुण उनमें विद्यमान थे। हिन्दू धर्म पर उनकी गहरी आस्था थी। न्याय के मार्ग से वे कभी न हटे। उन्होंने जो आदर्श पंजाब के सामने रखा था, यदि पंजाब के निवासी उस पर चलते तो इस प्रांत की वर्तमान दुर्दशा न होती। हिन्दू व सिखों को उन्होंने सदा समान दृष्टि से देखा। गो-ब्राह्मण की वह सदा पूजा करते रहे। धर्म और मन्दिरों की उन्होंने सदैव रक्षा की। गंगाजल उन्हें उतना ही पवित्र था जितना किसी हिन्दू के लिए। पंजाब की समृद्धि और सुख-शांति के लिए यह आवश्यक है कि यहाँ के लोग महाराजा रणजीतसिंह के निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण करें।

दानवीरता

आज से 120 वर्ष पूर्व, 27 जून 1839 के दिन अपने स्वर्गारोहण की वेला में जिस अपूर्व दानी रणजीतसिंह ने कोहेनूर हीरा तक दान कर दिया! उसका समूचा जीवन ही दानवीरता की सुन्दर गाथा है। जब 2 नवम्बर 1780 के शुभ दिन

अविभाजित पंजाब के गुजरांवाला नगर में रणजीतसिंह का जन्म हुआ, तो उनके पिता महासिंह ने ब्राह्मणों को महान् दान तथा भोज दिए थे। शैशव में रणजीतसिंह चेचक के रोग से इस तरह ग्रसित हुए कि उनकी बायीं आंख ही चली गई उनके प्राण बचने पर महासिंह ने कांगड़ा तथा ज्वालामुखी के देवी मन्दिरों में बड़ा चढ़ावा चढ़ाया। जब रणजीतसिंह का राजतिलक एक ब्राह्मण के हाथों सम्पन्न हुआ तो उन्होंने पुनः बड़ा धन बांटा। लाहौर जीतने के पश्चात् रणजीतसिंह ने पिछले राजाओ के खजाने में पड़े हुए सारे सिक्के दान कर दिये। मुल्तान विजय करने पर उन्होंने 8 दिन के लिए लाहौर तथा अमृतसर में दीपमाला उत्सव किया तथा महाराज स्वयं गली-कूचों में घूम-फिर कर धन लुटाते रहे। 13 जुलाई 1813 के दिन पंजाबियों की पठानों पर प्रथम विजय प्राप्त होने पर लाहौर तथा अमृतसर में लगातार दो मास तक अपूर्व उत्सव मनाया गया तथा ब्राह्मणों को बड़े दान दिये गए।

धार्मिक अत्याचार का अन्त

महाराजा रणजीतसिंह का प्रधान सेनापति हरिसिंह 'नलवा' तो पठानों के लिए आतंक का पर्याय था। आज तक पठान तथा अफरीदी मातायें अपने रोते हुए बच्चों को चुप कराने के लिए डराती हैं—'बच्चा! चुप कर जा, नलवा आ रहा है।'

जब नलवा को काश्मीर का सूबेदार नियुक्त किया गया तो उसे यह जान कर बड़ा दुःख हुआ कि वहाँ के असंख्य हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बना लिया गया था तथा उनके धर्म स्थानों को भ्रष्ट किया गया था। जहांगीर की बेगम नूरजहां ने श्रीनगर के शंकराचार्य मन्दिर को गिरा कर उसके संगमरमर के पत्थर से एक मस्जिद बनवा ली थी। कश्मीर के हिन्दुओं को पगड़ी पहनने या घोड़े की सवारी करने की भी आज्ञा न थी। महाराज के आदेश पर नलवा ने वह सारा दृश्य बदल दिया तथा लगभग पचास हजार बलात् मुसलमान बनाए हुए हिन्दुओं को पुनः शुद्ध करके हिंदू बनाया।

प्रभु का दास

यद्यपि रणजीतसिंह बड़े महत्त्वाकांक्षी एवं स्वेच्छाचारी भी थे पर महाराजा के जीवन का धार्मिक पहलू बहुत कम लोगों को ज्ञात है। इन्हें ईश्वर में अविचल विश्वास था तथा वे प्रतिदिन गुरुग्रन्थ साहब तथा हिंदू धर्म शास्त्रों का पाठश्रवण करते थे। वे अपने आप को 'खालसा' का गुलाम मात्र समझते थे। अमृतसर के हरि मन्दिर में एक बड़ा सा ढोल पड़ा रहता था जो गुरु गोविन्दसिंहजी के काल का माना जाता था। महाराजा ने उस ढोल का नाम रणजीत रखवा दिया था जिस से यह प्रकट हो कि वे तो सिख संप्रदाय के ढोल मात्र हैं। विनयी रणजीतसिंह ने अपने सिक्कों पर 'रणजीत सहाय' न लिखवा कर 'अकाल सहाय' लिखवाया था। उनके कई सिक्के नानकशाही तथा गोविंदशाही नाम से प्रसिद्ध थे।

विश्वास में परम धार्मिक, राज्य में धर्म निरपेक्ष

रणजीतसिंह कोई कट्टर पंथी अनुदार व्यक्ति न थे। उनके मन में सभी धर्मों के लिए समान आदर का भाव था। रणजीतसिंह से पूर्व अमृतसर के अकाल तख्त से घोषित होने वाले 'गुरुमत्ता' का सिखों की राजनीतिक गतिविधि पर भी पूरा प्रभाव होता था। महाराजा ने यह निश्चय किया कि आगे से अकाल तख्त के निर्णयों का प्रभाव केवल सिखों के धार्मिक जीवन पर होगा। राजनीतिक जीवन में वे पूर्ण स्वतन्त्र रहेंगे। धर्म को राजनीति से पृथक् करने के उपरान्त भी रणजीतसिंह स्वयं धर्मात्मा ही थे, आक्रमण करने से पूर्व वे कुछ प्रसिद्ध संतों तथा योगियों के पास आशीर्वाद के लिए जाते तथा विजय के पश्चात् उन्हें तथा धर्म स्थानों को बड़े-बड़े दान देते।

धर्म स्थानों का संरक्षण

महाराजा अमृतसर की चुंगी से प्राप्त होने वाले चुंगीकर का एक भाग अमृतसर मन्दिर में 'कढ़ाह प्रसाद' के लिये भेज देते थे। पंजाब केसरी ने अमृतसर के हर मन्दिर के बड़े गुम्बद एवं कलश पर स्वर्ण पत्र चढ़वा कर उस मन्दिर को ऐतिहासिक स्वर्ण मन्दिर में परिवर्तित कर दिया। ज्वालामुखी के देवी मन्दिर की मरम्मत एवं रक्षा के लिए भी महाराजा ने बड़ा धन लगाया।

न्याय की दृष्टि में सब समान

एक बार स्वर्ण मन्दिर के कुछ नियमों को भंग करने के अपराध में महाराजा को सार्वजनिक रूप से अकाली फूलासिंह द्वारा कोड़े लगाए गए। एक बार एक मुसलमान लड़की से विवाह करने के पाप का प्रायश्चित्त करते हुए महाराजा ने अमृतसर में जाकर पुनः 'अमृत छक कर' शुद्ध हो दोबारा सिख धर्म में प्रवेश किया तथा अपनी सोने की मूर्ति बनवा कर मथुरा के ब्राह्मणों को दान में दी।

दया का दिव्य गुण

रणजीतसिंह अत्यन्त उदार एवं दयालु राजा थे। अपने 40 वर्ष के राज्यकाल में उन्होंने एक भी व्यक्ति को मृत्युदण्ड नहीं दिया, चाहे स्वयं उनके जीवन पर कई बार आक्रमण हो चुके थे। एक बुढ़िया ने सुना था कि महाराजा पारसमणि हैं। भोली बुढ़िया घर की रसोई का तवा लेकर महाराजा की पीठ पर रगड़ने लगी कि स्पर्श से सोना बन जाय। उसके भोलेपन पर प्रसन्न होकर महाराजा ने उसे उसी के बराबर तौल का सोना दे दिया। आम के वृक्ष पर पत्थर मारने वाली एक बालिका का पत्थर महाराजा को लगा। महाराजा ने हंसकर कहा—जब निर्जीव वृक्ष भी पत्थर मारने पर फल देते हैं तो मेरे जैसे जीवित व्यक्ति को अधिक अच्छा व्यवहार करना चाहिए। महाराजा ने उस बाला को पर्याप्त पुरस्कार दे कर भेजा। एक अन्य कथा के अनुसार दुर्भिक्ष में महाराजा ने एक बूढ़े व्यक्ति के लिए एक भारी गंदम की बोरी स्वयं उठा कर उसके घर पहुँचा दी थी।

विनोद में भी धार्मिक

विनोद प्रिय महाराजा प्रतिवर्ष 'दाढ़ियों का मेला' लगाया करते थे, जिस में लम्बी दाढ़ी वाले लोगों को पर्याप्त पुरस्कार दिए जाते थे। बहुतों को दाढ़ी को दही से धोने के हेतु 8 आना प्रतिमास दिए जाते थे। कहा जाता है कि लाहौर के लाला रतनचन्द को उनकी लम्बी दाढ़ी के कारण महाराजा ने एक बहुत बड़ी जागीर प्रदान कर दी थी। प्रायः यह देखा जाता है कि काणे व्यक्ति को यदि काणा कहा जाये तो उसे बहुत चुभता है। किन्तु रणजीतसिंह गली के मासूम बच्चों से काणा कहलवाने से आनन्द मानते थे तथा उन्हें पारितोषिक भी देते थे।

जनता का धर्म

इतिहासकार स्टीनबैक के अनुसार महाराजा रणजीतसिंह के समय पंजाब की आबादी लगभग 35 लाख थी जिस में सिखों सहित हिन्दुओं की जनसंख्या मुसलमानों से तीन गुणा अधिक थी। सिख हिन्दू जीवन परम्परा के ही अभिन्न अंग थे तथा सामाजिक धार्मिक एवं राजनीतिक दृष्टि से उनकी गणना सदा हिंदू नाम से ही होती थी।

गोवध निषेध

महाराजा के आदेश से गोवध कानूनन् बन्द था। रणजीत की सेना में भरती यूरोपीय अफसरों के लिए भी यह कड़ा नियम था कि वे गोमांस तथा तम्बाकू का सेवन बिल्कुल न करें। अपने परिवारों के सहित रहें तथा नौकरी के कार्यकाल में दाढ़ी-मूंछ अनिवार्यतः रखें।

बीमारी में संतों के दर्शन

जब 1833 में महाराजा बीमार पड़े तो वे प्रतिदिन रावी के तट पर एक वैरागी के पास जाया करते थे। 1839 में उनकी अन्तिम बीमारी के समय बहुत से योगियों और ज्योतिषियों को बुला कर महाराजा के स्वास्थ्य के लिए प्रार्थनायें करवाई गईं। अन्तिम समय की धार्मिक क्रियाओं का आंखों देखा विस्तृत वर्णन एक फारसी प्रलेख 'रोजनामचा—उमदत उल तवारीक' में दिया हुआ है जो कि लाहौर दरबार के प्रसिद्ध इतिहासकार लाला सोहनलाल सूरी द्वारा लिपिबद्ध किया गया था।

अंतिम दर्शन

स्वर्गवास के एक दिन पूर्व 26 जून 1939 को महाराजा ने 'आदि ग्रन्थ' और बाबा ग्रन्थ का पवित्र दर्शन किया तथा उन्हें शीर्ष नवाया। महाराजा ने भाईजी (भाई गोविंदराम) के कहने पर 8 लाख मुद्रा दान का एक संकल्प और पढ़ा। श्री सूरी के अनुसार सोने और चांदी के श्रृंगार और हौदों के साथ हाथी और सुन्दर घोड़े दान में दिये गये।

गंगाजल तथा गोदान

जब महाराजा को मृत्यु की दारुण वेदना प्रतीत हुई तो उन्होंने इच्छा प्रकट की कि उनके शरीर पर शीतल गंगाजल का एक घड़ा डाला जाये। फिर महाराजा ने 51 गाय, 1100 स्वर्ण मुद्राएं, बहुत से तेज गति वाले घोड़े तथा बहुत से कपड़ों के दान का संकल्प किया। महाराजा ने अपनी मृत्यु को निकट जान कर अपने संस्कार के लिये चन्दन की लकड़ी खरीद लेने का आदेश दे दिया।

कोहेनूर हीरे का दान

भाई गोविंदराम ने महाराजा को स्मरण कराया कि उन्होंने पहले कई बार यह इच्छा प्रकट की थी कि वे भारत के सभी तीर्थों का भ्रमण करेंगे तथा उस अमूल्य हीरे कोहेनूर को उड़ीसा के पुरी मन्दिर में भगवान् जगन्नाथ को अर्पण करेंगे। लाला सोहनलाल सूरी के लिखे आंखों देखे वर्णन के अनुसार महाराजा ने तुरंत संकल्प किया तथा आदेश दिया कि कोहेनूर भगवान् जगन्नाथजी को भेज दिया जाय। दुर्भाग्य से कोहेनूर उस समय कोष प्रबन्धक मिस्सर बेली राम के पास था, जिसने उस समय झूठे बहाने करने प्रारम्भ किये तथा महाराज की मृत्यु के बाद कहा कि हीरा राज्य की सम्पत्ति होने के कारण महाराजा को उसे दान में देने का अधिकार नहीं था।

कुछ समय के पश्चात् महाराजा ने शीर्ष नवा कर अपने हीरों से जटित बाजूबन्दों को दान कर दिया जिन का मूल्य दो लाख रुपये था। साथ ही उन्होंने बहुत से कीमती आभूषण, दो हाथी, सोने के साथ तथा 5 लाख रुपया दान दे दिया।

भगवान् नारायण के अन्तिम दर्शन

अन्तिम दिन 27 जून 1939 को जब महाराजा अचेत हो गए तो भाई गोविन्द राम ने सुझाया कि सरकार (महाराजा) को अपनी दृष्टि अविनाशी परमेश्वर पर केन्द्रित करनी चाहिए। यह सुनने पर महाराजा ने अपने दोनों हाथ आकाश की ओर उठाये और कहा कि उनके नेत्र भगवान् नारायण पर केन्द्रित हैं तब भाई साहब ने 'दिया बत्ती' क्रिया के लिए दीपक तैयार करने को कहा। महाराजा ने तुलसीदल से आच्छादित अपनी शय्या तथा सोने की मुद्राएं दान करने का संकल्प किया। फिर महाराजा के शीर्ष को गंगाजल तथा दही से स्नान करवाया गया।

राम, राम, राम

जब महाराजा के प्राण निकल रहे थे भाई गोविन्दराम ने उनके कान में तीन बार राम-राम का उच्चारण किया। महाराजा ने दो बार राम-राम बोला किन्तु तीसरी बार उनके ओष्ठ स्थिर हो गए तथा उनके प्राण नेत्रों के मार्ग से निकल गए। अन्तिम समय तक उनके नेत्र खुले रहे।

1 जनवरी 1960
दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

राम प्यारे और सरदार प्रतापसिंह

कामरेड राम प्यारे जो खुद कांग्रेस का मेम्बर था। विधानसभा में इतना ही कहा प्रतापसिंह को—सरदार साहब! अपनी इज्जत की रक्षा करो। आपके बेटों ने आपका नाम बदनाम कर रखा है। ईंट के भट्टों वालों से ईंट लेकर पैसे नहीं देते। सरकार को बिजली का पैसा नहीं चुकाते। सिनेमाघर बना लिया। किसी से लकड़ी ली और फर्नीचर लिया उसका पैसा नहीं देते। मिलिटरी अफसर की बीबी आती है सिनेमाघर में वहां पर उसके साथ बदमाशी हो जाती है। उसके चरित्र पर हमला हो जाता है। शीलहरण हो जाता है। क्या-क्या पाप कर रहे हैं। आप अपनी इज्जत बचाइए। ये क्या हो रहा है? उसका इतना कहना था कि—अच्छा! तेरा मगज (मानस) ठीक करूंगा।

उसी दिन वह बेचारा चण्डीगढ़ से बस में बैठकर (करनाल में उसकी कांस्टि्टयुएंसी थी।) थाने के सामने बस से उतरा तो 32 गुण्डों ने एक साथ उस पर प्रहार करके उसके शरीर में घाव ही घाव कर दिए। मरते-मरते बचा। तीन-चार महीने के बाद कई घाव लिए हुए और स्ट्रेचर पर डालकर लोग उसको ले गए पंडित नेहरू को दिखाने के लिए। आपके प्यारे सरदार प्रतापसिंह ने क्या किया। उन्होंने कहा, मैं क्या कर सकता हूं। पंजाब में रहना है उनके साथ बना करके रहना पड़ेगा। अत्याचारी के साथ बनाकर रखनी पड़ेगी। इस प्रकार नेहरूजी द्वारा प्रतापसिंह कैरो जैसे भ्रष्ट प्रशासक को संरक्षण देना भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने वाला और अलगाव को प्रश्रय देने वाला सिद्ध हुआ।

गीता वह बिना तेल का दीपक है जो अनन्त काल तक हमारे ज्ञान मन्दिर में प्रकाश करता रहेगा। पाश्चात्य दार्शनिक ग्रंथ भले ही खूब चमके किन्तु हमारे लघु दीपक का प्रकाश उन सबसे अधिक चमककर उन्हें ग्रस लेगा।

—**द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर**

राष्ट्रपति चुनाव हेतु विचारपूर्ण चेतावनी राष्ट्र की अन्तरात्मा की गुहार

राष्ट्रपति का पद राष्ट्र का सर्वोच्च महिमामंडित पद है। पति का अर्थ है पत (लाज) की रक्षा करने वाला, जैसे व्यक्तिगत परिवार में पति परिवार के मान-सम्मान एवं लाज का रक्षक होता है। उसी प्रकार राष्ट्र के वृहत् परिवार में भी राष्ट्रपति राष्ट्र की लाज बचाने वाला होना चाहिए। निश्चय ही देश की लाज को गँवाने वाला राष्ट्रपति किसी राष्ट्र को नहीं चाहिये। जिस प्रकार प्राचीनकाल में नारी अपनी स्वेच्छा से अपने अन्तःकरण की पवित्र प्रेरणा से स्वयंवर में स्वयं ही अपने पति का वरण करती थी, वैसे ही आधुनिक काल के लोकतंत्र में जनता को अपने राष्ट्रपति को स्वयं ही चुनने का अधिकार है। अमेरिका में जिस प्रकार जनता सीधे ही प्रत्यक्ष मत से अपने राष्ट्रपति का चुनाव करती है, वहीं भारत में जनता अप्रत्यक्ष रूप से चुने हुए प्रतिनिधियों (सांसदों एवं विधायकों) के माध्यम से राष्ट्रपति का चुनाव करती है।

लोकतंत्र में राष्ट्रपति के चुनाव के लिये लोकतांत्रिक प्रावधान के उपरान्त भी देश के तानाशाह प्रशासक अपनी रुचि एवं स्वार्थ के अनुकूल राष्ट्रपति अथवा मुख्यमंत्री राष्ट्र पर थोपने का प्रयास करते हैं। वर्तमान प्रधानमंत्री ने तीन राष्ट्रपतियों के साथ ऐसा किया है और चौथे को चुनने अथवा चुनवाने जा रही हैं। जब सन् 1969 में कांग्रेस दल ने श्री नीलम संजीव रेड्डी को राष्ट्रपति पद के लिये अपने सर्वसम्मत प्रतिनिधि के रूप में खड़ा किया तो श्रीमती इंदिरा गाँधी ने अपने प्रभाव का प्रयोग कर कांग्रेस के प्रत्याशी को हराने तथा अपने मन के अनुकूल श्री वी.वी. गिरि को जिताने का अभियान चलाया। उन्होंने सांसदों एवं विधायकों को कहा कि वे अपनी अन्तरात्मा की पुकार सुनकर राष्ट्रपति पद के लिये श्री वी.वी. गिरि को जितावें। दूसरे शब्दों में अन्तरात्मा की पुकार का अर्थ है—प्रधानमंत्री की इच्छा की पुकार।

प्रधानमंत्री ने राष्ट्रपति श्री गिरि को रबर की मुहर के समान राष्ट्रपति बनाकर चलाना चाहा। चाहे वे इसमें पूर्णतः सफल नहीं हो पायी। जो व्यक्ति केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में अपनी योग्यता सिद्ध कर ही नहीं सके, उन राजनीतिक मंडियों के खोटे सिक्कों को राष्ट्रपति के सर्वोच्च सिंहासन पर नाममात्र का राष्ट्रपति बनाकर अपना

राजनीतिक उल्लू सिद्ध करना कहाँ तक लोकतंत्र के हित में है? जिस श्री फखरुद्दीन अली अहमद ने असम में साम्प्रदायिक दंगे करवाने तथा बांग्लादेश (पूर्वी पाक) के लाखों-लाख मुसलमानों को असम में बसाकर आज सारे राष्ट्र के लिये सिरदर्द पैदा कर दिया है, उसी को राष्ट्रपति बनाकर, स्वयं अपनी न्यायनीति विरुद्ध चुनाव प्रक्रिया को जन समालोचना से बचाने हेतु आपातकाल लागू करवाकर अपने मनचाहे राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्र के लोकतंत्र का गला घोंटने का कुत्सित खेल खेला गया।

आज राष्ट्रपति पद के लिये सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश श्री हंसराज खन्ना द्वारा सांसदों एवं विधायकों से जब अपनी अन्तरात्मा की पुकार सुनकर मतदान करने का निवेदन किया जाता है तो प्रधानमंत्री इसे लोकतंत्र का तिरस्कार कहकर इसका उपहास करती हैं। चाहे हमने जीवन भर राजनीति में प्रवेश नहीं किया तथा न इस विषय में कोई कामना ही रखी है, पर हमारा जाग्रत विवेक यह नहीं समझ पाता कि यदि 1969 में स्वयं श्रीमती इंदिरा गाँधी की अपनी ही पार्टी के घोषित प्रत्याशी श्री नीलम संजीव रेड्डी को हराना अन्तरात्मा की आवाज माना जा सकता था तो राष्ट्र के हित में किसी योग्य राष्ट्रभक्त व्यक्ति को राष्ट्रपति चुनना अन्तरात्मा की आवाज क्यों नहीं माना जा सकता?

1. श्री ज्ञानी जैलसिंह का राजनीतिक चरित्र एवं राष्ट्रीय निष्ठा विवाद के विषय बने हुए हैं। ज्ञानीजी मूलतः अकाली दल के उग्रवादी नेता रहे हैं, वे मास्टर तारासिंह के साथ पंजाबी सूबा आन्दोलन में सक्रिय भाग लेते रहे हैं।

2. जिस प्रकार प्रशासन की मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति से भारतमाता का अंग विच्छेद होकर पाकिस्तान रूपी कुठारधारी दैत्य सदा के लिए शिर पर खड़ा हो गया, उसी प्रकार पंजाब में अकाली दल के उग्र आंदोलनों से डर कर उन्हें किसी भी कीमत पर प्रसन्न रखने की (अकाली-तुष्टीकरण की) नीति ने खालिस्तान रूपी कृपाणधारी महापिशाच को जन्म दे दिया है।

3. इसी अकाली-तुष्टीकरण की नीति के कारण भीमसेन सच्चर एवं गोपीचंद भार्गव, दोनों पुराने तपस्वी कांग्रेस नेताओं को मुख्यमंत्री पद से हटा कर प्रतापसिंह कैरों को पंजाब का मुख्यमंत्री बनाया गया तथा तब से अब तक पंजाब में किसी अकेशधारी हिन्दू को मुख्यमंत्री पद के योग्य नहीं माना गया। इसी ने भीतर ही भीतर पंजाबी सूबा की आड़ में स्वतंत्र खालिस्तान की मांग को बड़े भीषण रूप में फलने-फूलने का अवसर प्रदान किया है। ज्ञानी जैलसिंह का इस विषवृक्ष को सींचने में कम योगदान नहीं रहा। पहले पंजाब के मुख्यमंत्री के रूप में तथा फिर केन्द्रीय गृहमंत्री के रूप में उन्होंने खालिस्तान के आन्दोलन को न केवल सहन किया है वरन् सब प्रकार से गुप्त समर्थन भी दिया है।

4. सण्डे, कलकत्ता के दिनांक 25 अप्रैल-1 मई, 1982 के अंक में श्री शुभव्रत भट्टाचार्य ने अपने एक लेख में सिद्ध किया है कि ज्ञानी जैलसिंह के देश का विभाजन कर स्वतंत्र खालिस्तान चाहने वाले भीषण उग्रवादी भारतद्वेषी दल खालसा के साथ आन्तरिक सम्बन्ध हैं। क्या ऐसे व्यक्ति के राष्ट्रपति बन जाने पर भारत की अखण्डता सुरक्षित रह सकती है?

5. जब ज्ञानी जैलसिंह पंजाब के मुख्यमंत्री थे तब सन् 1972 से 1977 के बीच उन्होंने पंजाब में सिखों के मध्यकालीन सैनिक संगठन निहंग जत्था को प्रोत्साहित किया तथा स्थान-स्थान पर विचित्र वेशधारी नशे में मतवाले निहंग कृपाणें चमकाने तथा युद्धाभ्यास करने लगे। निहंगों ने ज्ञानी जैलसिंह को महासिख की उपाधि से विभूषित किया।

6. ज्ञानी जैलसिंह के प्रख्यात पत्रकार एवं भूतपूर्व मंत्री लाला जगतनारायण की हत्या में अन्तर्लिप्त सन्त भिण्ड्रावाले के साथ बड़े मधुर संबंध हैं। भिण्ड्रावाले को ज्ञानीजी का संरक्षण प्राप्त रहा है। 3 अप्रैल '82 से एक सप्ताह के लिए भिण्ड्रावाले अपने दो सौ चेलों के साथ दिल्ली में आए। उन शिष्यों में से 70 के हाथों में हथियार थे, जिनमें से अधिकांश अवैध आग्नेयास्त्र थे। पंजाब से गुप्त सूचना भी आई कि लोग अवैध हथियार लिए दिल्ली में प्रवेश कर रहे हैं। किन्तु ज्ञानी जैलसिंह या उनके मंत्रालय ने कोई कार्रवाई नहीं की।

7. सन्त भिण्ड्रावाले के सम्मान में दिल्ली के दो सिख नेता रछपाल सिंह और जत्थेदार संतोषसिंह के पुत्र मंजीत सिंह ने भोज दिया जिसमें ज्ञानी जैलसिंह भी उपस्थित थे।

8. अक्टूबर, 1977 में 'सिख होमलैण्ड अकाली दल' की लुधियाना की बैठक में दल खालसा निर्माण करने का निश्चय हुआ। उसमें डॉ. जगजीतसिंह और सरदार कपूरसिंह उपस्थित थे। 6 अगस्त '78 को चण्डीगढ़ के सैक्टर 35 के गुरुद्वारा में दल खालसा का निर्माण हुआ ताकि पूर्ण खालसा राज (खालिस्तान) का निर्माण हो सके। हर सिमरनसिंह को मुखिया पंच बनाया गया। उसे ज्ञानी जैलसिंह का आशीर्वाद प्राप्त था।

9. 18 सितम्बर, 1981 के दिन जालंधर में दल खालसा के उग्रवादी गुर बचनसिंह ने भारतीय संविधान को चौराहे में जलाया। ज्ञानी जैलसिंह ने क्या कार्रवाई की?

10. 19 सितम्बर '81 की बैठक में भारत का विमान अपहरण करने का विचार पक्का हुआ। 20 सितम्बर को गजिन्दरसिंह और सतनामसिंह अमृतसर से

श्रीनगर जाने वाले इंडियन एयरलाइन्स के विमान में बैठकर स्थिति एवं योजना पर विचार करने गये। 29 सितम्बर '81 को 5 उग्रवादी अकालियों ने भारतीय विमान का अपहरण किया तथा उसे लाहौर ले गये। हर सिमरनसिंह ने घोषणा की कि यह दल खालसा की चेतावनी है। 30 सितम्बर को ज्ञानी जैलसिंह एयरपोर्ट पर अपहृत यात्रियों से मिलने गये।

11. हर सिमरनसिंह ने अपने जिन 17 सर्वोच्च अधिकारियों को भेजा उनमें—जसवीरसिंह, पंजाब सिविल सर्विस, प्रीतमसिंह पंजाब सिविल सर्विस, मेजर दर्शनसिंह उपनिदेशक स्कूल शिक्षा, त्रिलोचनसिंह जनसंपर्क अधिकारी, प्रो. अत्तरसिंह (पंजाब विश्वविद्यालय), प्रो. हरनामसिंह शान (प्राध्यापक, गुरुनानक पंजाब विश्वविद्यालय), प्रो. कुलवंत सिंह (पंजाब विश्वविद्यालय), डा. सोहनसिंह, डा. करनैल सिंह—ये सभी ज्ञानी जैलसिंह के विश्वासी लोग दल खालसा के विचार-मार्गदर्शक भी हैं। ज्ञानी जैलसिंह राष्ट्र के सामने अपनी स्थिति स्पष्ट करें।

12. दल खालसा को श्री हर मुर्नदसिंह से आर्थिक सहायता मिलती है जिसे विदेश में रहने वाले डा. जगजीतसिंह बड़ी राशि भेजते रहते हैं। ज्ञानी जैलसिंह ने इस देशद्रोही कार्य हेतु आने वाली विदेशी आर्थिक सहायता को क्यों नहीं रोका? दाल में कुछ काला अवश्य है।

13. ज्ञानी जैलसिंह के घर (जिला फरीदकोट) के वरीय आरक्षी अधीक्षक सिमरनसिंह ने डी.आई.जी. (खुफिया विभाग) श्री सी.के. साहनी को जनवरी '80 में पत्र लिखा कि ज्ञानी जैलसिंह जैसे भ्रष्ट व्यक्ति के केन्द्रीय गृहमंत्री बन जाने के पश्चात् जिले में शान्ति व्यवस्था रखना असम्भव है।

क्या ऐसे ही व्यक्ति का राष्ट्रपति बनना या बनाना राष्ट्र सेवा है या राष्ट्रद्रोह?

असम समस्या, काश्मीर समस्या, पंजाब समस्या, पंजाब में साम्प्रदायिक दंगे, इतिहास में पहली बार सिखों द्वारा मंदिरों में गोमांस फेंकना तथा खुलेआम देशद्रोही एवं हिन्दू-द्वेषी नारे लगाना, मीनाक्षीपुरम, मेघालय, मुरादाबाद में सामूहिक धर्मान्तरण एवं हिंसाकाण्ड, ये केन्द्रीय गृहमंत्री की कुछ बड़ी उपलब्धियाँ हैं। अतीत की उपलब्धियाँ एवं वर्तमान की चेष्टाएं ही भविष्य की सम्भावनाओं का मार्ग प्रशस्त करती हैं।

राष्ट्र किसी भी दल या पार्टी, व्यक्ति या प्रशासक से अधिक महत्त्वपूर्ण है। अतः सांसदों एवं विधायकों को राष्ट्र के हित में, व्यक्तिगत स्वार्थों एवं दलगत लोभ-लाभ से ऊपर उठकर राष्ट्रमाता की लाज बचाने वाला सक्षम, सुयोग्य राष्ट्रभक्त राष्ट्रपति चुनना चाहिए।

पंजाब समस्या—निदान और समाधान

पंजाब की समस्या आज पूरे राष्ट्र के लिए चिंता का विषय बन गई है। अकाली पंथ की राजनीतिक मांगों के आंदोलन के साथ-साथ उग्रपंथियों ने स्वतंत्र खालिस्तान की मांग भी उठा रखी है। उग्रपंथियों द्वारा दो-दो बार भारत के विमानों के अपहरण के राष्ट्रद्रोही प्रयास हुए, चौराहों पर भारतीय संविधान जलाया गया, स्वतंत्र खालिस्तान के नोट, मुद्रा, पारपत्र सभी छाप लिए गये, खालिस्तान आंदोलन की तर्कसम्मत आलोचना छापने वाले हिन्द समाचार के ख्यातनाम संपादक लाला जगतनारायण की हत्या कर दी गई, पंजाब के मन्दिरों में गोमांस फेंका गया, लाला जगतनारायण के सुपुत्र को गोमाता का कटा हुआ कान पार्सल करके भेजा गया तथा लिखा गया—'यह तुम्हारी माँ (गोमाता) का कान है, यदि हमारा बस चलता तो तुम्हारे बाप का कान काट कर भी भेज देते।' अकाली पंथ की सभी धार्मिक मांगों को मान लेने पर भी अकाली पंथ ने घोषणा की है कि वह अपनी राजनीतिक मांगों की पूर्ति हेतु कम से कम एक लाख बलिदानी योद्धाओं की सेना तैयार करेगा। इसका अर्थ स्पष्ट रूप से देश की जनता को संत्रास एवं प्रशासन से युद्ध ही है।

प्रत्येक समस्या का कोई मनोवैज्ञानिक कारण होता है, अकाली सिखों की ऐसी मनोवृत्ति निर्माण होने का कारण क्या है?

पंजाब में अंग्रेजों का प्रवेश सबसे अन्त में

सन् 1757 में प्लासी के युद्ध के उपरान्त अंग्रेजों का पंजाब को छोड़कर, शेष भारत पर राज हो गया था। पंजाब में प्रवेश हेतु उन्हें लगभग 90 वर्ष और संघर्ष करना पड़ा। महाराजा रणजीतसिंह के जीवनकाल तक अंग्रेज, लाख प्रयत्न करने पर भी, पंजाब को हस्तगत नहीं कर सके।

महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु के उपरान्त सन् 1845 में अंग्रेजों ने पंजाब में प्रवेश का प्रयास किया। प्रथम सिख युद्ध में अंग्रेज हार गये तथा सिख जीत गए। द्वितीय सिख युद्ध में अंग्रेजों ने कूटनीति का अवलम्बन लिया। उन्होंने महाराजा रणजीतसिंह की विधवा रानी जिन्दां को फुसला कर अपनी ओर कर लिया। युद्ध-भूमि में जब सिख वीरों ने तोपों को चलाना चाहा तो वे यह देखकर हताश हो

गये कि तोपों में बारूद के स्थान पर सरसों भर दी गयी थी। इस प्रकार सिख वीर धोखे के शिकार हुए तथा पंजाब पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। रानी जिन्दां भी अंग्रेजों की छलनीति से क्षुब्ध होकर नेपाल भाग गई। महाराजा रणजीतसिंह के अबोध पुत्र कुंवर दिलीपसिंह को अंग्रेज इंग्लैण्ड ले गये। वहाँ उसका धर्मान्तरण कर उसे ईसाई बना दिया गया तथा पश्चिमी शिक्षा पद्धति से उसके राष्ट्रप्रेम को कुचलने का प्रयास किया गया। कहते हैं कि जवान होने पर उसे मातृभूमि के दर्शन की प्रबल लालसा हुई। बहुत आग्रह करने पर उसे एक जहाज में भारत की ओर लाया गया। किन्तु मुम्बई से 20/25 मील दूर ही जब उसका जहाज भारत की ओर आ रहा था तो भारत के तट पर सिख वीरों एवं अन्य जनता ने प्रबल नारे लगाने शुरू कर दिये—'जो बोले सो निहाल, सत् श्री अकाल; राज करेगा खालसा, याकी रहे न कोय' इत्यादि। अंग्रेजों को भय अनुभव हुआ कि कुंवर दिलीपसिंह के भारत पहुँचने पर कहीं पुनः क्रान्ति न हो जाए। अतः उसके जहाज को वहीं से वापस इंग्लैण्ड की ओर मोड़ दिया। मातृभूमि के दर्शन की प्रबल लालसा से उछलता हुआ उस नवयुवक का हृदय इस आघात को सहन न कर सका तथा उसका प्राणांत हो गया।

अंग्रेजों ने सिखों को अपना प्रथम शत्रु माना

जब लॉर्ड डलहौजी भारत में आया तो उसने कहा कि सिख हमारे प्रथम दर्जे के शत्रु हैं (Sikhs are our enemy number one)। सिखों से राज्य बड़ी कठिनाई से जीता जा सका है तथा सबसे अन्त में हस्तगत हुआ है। अतः सिख ही हमारे सबसे प्रबल शत्रु हैं।

सिखों का मनोबल गिराने के उद्देश्य से लॉर्ड डलहौजी ने एक जर्मन पादरी ट्रम्प (Trump) को कहा कि वह सिखों के धर्मग्रंथ गुरु ग्रंथसाहिब का अंग्रेजी में अनुवाद कर ऐसी व्याख्या करे जिससे सिखों का हिम्मत-हौंसला टूटे तथा वे समाज में अप्रतिष्ठा एवं आत्मनिन्दा के शिकार बनें। पादरी ट्रम्प ने अंग्रेजी में गुरु ग्रंथसाहिब की व्याख्या पर एक जिल्द लिखी थी और आगे कार्य जारी था। उसने लिखा कि 'गुरु ग्रंथसाहिब, ग्रंथ क्या है? चूँ चूँ का मुरब्बा है, विचित्र खिचड़ी है। नानक की वाणी, कबीर की वाणी, दादू की वाणी, रविदास की वाणी, नामदेव की वाणी—सभी का अनमेल गड़बड़ घोटाला है यह ग्रंथ। इसमें कोई एक समान दार्शनिक सिद्धान्त नहीं है। कहीं शंकर का अद्वैत, कहीं रामानुज का विशिष्टाद्वैत, कहीं रामानंद की भक्ति, कहीं निराकार, कहीं साकार, कहीं ज्ञान, कहीं भक्ति, कहीं वैराग्य—सभी का विचित्र सम्मिश्रण है।'

इस पुस्तक से सिखों की धर्मभावना को बड़ी चोट पहुँची। अंग्रेज यही चाहता भी था।

सिख राज्यों ने ब्रिटिश राज का लुटता ताज बचाया

अकस्मात् 1857 का स्वतन्त्रता युद्ध प्रारम्भ हो गया। मेरठ के क्रान्तिकारियों ने यमुना पार कर दिल्ली में प्रवेश किया। दिल्ली के क्रान्तिवीरों ने साथ दिया। 6-7 दिन तक दिल्ली में क्रान्तिकारियों का राज था। बहुत से अंग्रेज अफसर मार डाले गये, कई भाग गये। केवल मुट्ठी भर (25-30) अंग्रेज अफसर दिल्ली रिंग रोड पर भूली भटियारिन नामक किले में भूखे-प्यासे पड़े हुए अपनी अनिवार्य भावी मृत्यु के पल गिन रहे थे। तब सहसा पंजाब के सिख राज्यों (पटियाला, जींद, सरबान, संगरूर, कपूरथला) की ताजादम सेनाएं अंग्रेजों की सहायता के लिए पहुँच गईं। सिख वीरों ने अपने ही भारतीय भाइयों को मारा तथा हारते हुए, भागते हुए अंग्रेजों को पुनः पदासीन करवा दिया। सन् 1857 में जब सिख राज्यों ने ब्रिटिश राज्य के लुटते हुए ताज को बचा लिया तो लॉर्ड डलहौजी ने पुनः कहा—'मैं भूल में था। सिख हमारे पहले दर्जे के शत्रु नहीं, वे हमारे पहले दर्जे के मित्र हैं। उन्होंने ही हमारा लुटता हुआ ताज हमें पुनः पहनाया है।'

लॉर्ड डलहौजी ने जर्मन पादरी ट्रम्प को गुरु ग्रंथसाहिब की समालोचना करने से रोक दिया तथा सिख राज्यों को अंग्रेज भक्त बनाने हेतु अनेक प्रलोभन दिये।

रेवाड़ी के राजा राव तुलाराम (वर्तमान केन्द्रीय मंत्री राव वीरेन्द्र सिंह के पूर्वज) ने 1857 की क्रान्ति में भाग लिया था। अतः उन्हें दिल्ली के चाँदनी चौक में फांसी दी गई तथा उनके राज्य की भूमि छीन कर महेन्द्रगढ़ इत्यादि के हिन्दीभाषी क्षेत्र सिखों के राज्यों (पटियाला, कपूरथला, संगरूर आदि) को पुरस्कार स्वरूप जागीर में दे दिये गये। तब से लेकर हरियाणा राज्य के निर्माण तक ये क्षेत्र सिख राज्यों के अंग बने रहे।

लॉर्ड डलहौजी के स्वागत में स्वर्ण मन्दिर में दीपावली

अंग्रेजों की कूटनीति के भंवरचक्र में फँसे सिख बन्धुओं ने लॉर्ड डलहौजी को स्वर्ण मन्दिर में आमन्त्रित कर सार्वजनिक अभिनन्दन-सत्कार किया, उसे सरोपा (सम्मान शिरोवेश एवं खड्ग) भेंट किया तथा विशेष दीपमालिका सज्जा की। लॉर्ड डलहौजी जूतों सहित हरमन्दिर (दरबार साहिब के पवित्रतम प्रकाश मन्दिर) तक चला गया तथा उसने अपनी यूरोपीय पद्धति के अनुसार वहाँ पहुँच कर अपना हैट भी उतार दिया। अन्य सभी यात्रियों के लिए पाँव धोकर प्रवेश करने तथा सिर को ढक कर जाने का कठोर नियम है। किन्तु भारत के वायसराय को यह नियम-पालन करवाने का साहस उन सिख वीरों में भी नहीं बचा था जिन्होंने पूरे भारत के सम्राट् बन जाने पर भी अंग्रेजों को 90 वर्ष तक पंजाब में घुसने भी नहीं दिया था।

सिख संप्रदाय को हिन्दू समाज से विलग करने का षड्यन्त्र

अंग्रेजों ने सोचा कि जब 1857 में इस हिन्दू बहुल देश में सर्वत्र क्रान्ति की

ज्वालायें भड़क उठी थीं तब सिखों ने ही ब्रिटिश साम्राज्य को भस्म होने से बचाया था। इसलिए उन्होंने योजनापूर्वक सिखों को हिन्दू समाज से अलग कर सदा अपनी स्वामीभक्त सैन्य शक्ति के रूप में विकसित करने की चाल चली। घोषणा की गई कि सिख वीरों को सेना में सुविधायें दी जावेंगी, उनकी जनसंख्या के अनुपात से बहुत अधिक नौकरियाँ उनके लिए सुरक्षित होंगी। शर्त केवल यह होगी कि वे धर्म के कोष्ठ में हिन्दू न लिखकर सिख लिखें। हिन्दू समाज के अभिन्न अंग सिख बंधुओं को अपने मूल समाज से अलग करने का यह कुत्सित प्रयास था।

लॉर्ड मैकॉलिफ द्वारा हिन्दू द्वेष का विषैला डंक

लॉर्ड डलहौजी ने पादरी ट्रम्प का काम रुकवा कर कलकत्ता के अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर लॉर्ड मैकॉलिफ को यह कार्य सौंपा कि वह सिख समाज को मूल हिन्दू समाज से अलग करने हेतु ऐसी द्वेषी मनोवृत्ति निर्माण करने वाला साहित्य निर्माण करे। अंग्रेज की फूट डालने वाली नीति के अनुसार मैकॉलिफ ने कलकत्ता से ही घोषणा कर दी, 'मैंने सब धर्मों का अध्ययन किया है। उनमें सिख धर्म सर्वोत्तम है। सिख धर्म हिन्दू धर्म की शाखा नहीं, हिन्दू धर्म का सुधार आन्दोलन भी नहीं, हिन्दू-मुस्लिम समन्वय साधना भी नहीं। यह सब धर्मों में से सबसे अन्तिम, सबसे अत्याधुनिक एवं पूर्णतम धर्म है। (Sikhism is the youngest, The most modern religion, The Consummation of all religions.)

मैकॉलिफ ने सबको भ्रमित करने हेतु घोषणा कर दी कि वह नौकरी त्याग कर ईसाई धर्म त्याग कर सिख बनने हेतु अमृतसर जा रहा है। उसने अमृतसर जाकर अमृत छक कर, कड़ा पहनकर अपना नाम मैकॉलिफसिंह रख लिया। उसकी दाढ़ी पहले ही थी, केश उसने लम्बे रखे नहीं, जीवन भर टोप पहनता रहा। उसने अकालतख्त से उपदेश करना शुरू कर दिया, खालसा कालेज अमृतसर का सर्वेसर्वा बन गया। उसने सिखों को ठगने हेतु अपील की कि वह डिप्टी कमिशनरी का पद छोड़कर सिख धर्म का इतिहास एवं दर्शन छः भाग में लिखेगा। तदर्थ उसे आर्थिक सहयोग चाहिए। सिखों ने देशभर के गुरुद्वारों से अपीलें करके उसे लाखों रुपया एकत्र कर दिया। मैकॉलिफ ने कई वर्ष परिश्रम करके 'हिस्ट्री एण्ड फिलॉसफी ऑफ सिखिज्म' नामक ग्रंथ छः खण्डों में प्रकाशित किया। उसकी प्रथम पंक्तियों में ही उसने सिख मानस में एक विषैला डंक मारा। Sikhs! Beware of Hindus. They are an all absorbing nation. They have absorbed Huns, Shakas. Parthians and Seythians, Greeks and Iranians. They have absorbed Buddhism and Jainism. They would kill you in their fraternal Embrace.

सिखों, हिन्दुओं से सावधान रहो। वह सबको पचा लेने वाला राष्ट्र है। उन्होंने हूणों को, शकों को, पार्थियन-सिथियन को, यूनानी-ईरानी को, बौद्धों

को, जैनों को सबको आत्मसात् कर लिया है। वे आपको भी अपने भ्रातृभाव के आलिंगन में मार डालेंगे।—इस विषैले विचार का प्रभाव बड़ा भयानक हुआ।

हिन्दू-सिख भेद की अतिरंजित व्याख्या

मैकॉलिफ ने हिन्दू-सिख ऐक्य के पुष्ट सैद्धांतिक आधारों को दुर्लक्ष्य कर हिन्दू-सिख भेदभाव की विकृत एवं अतिरंजित व्याख्या की। उसने लिखा—हिन्दू जातिप्रथा मानते हैं। सिख नहीं मानते। हिन्दू मूर्तिपूजक हैं, सिख निराकार को मानते हैं, हिन्दू अवतारवाद मानते हैं, सिख नहीं मानते। हिन्दू कायर हैं, सिख वीर हैं। हिन्दू दाल खोर (दाल-भात खाने वाला) है, सिख मांस खोर है। हिन्दू पराधीन रहा है, सिख विजेता है। हिन्दू रूढ़िवादी है, सिख रूढ़िमुक्त है, इत्यादि।

इसने पंजाब के घर-घर में फूट डाल दी। वास्तव में अनेक हिन्दू निराकार के उपासक भी हैं, अनेक जाति-प्रथा को नहीं मानते, अनेक रूढ़िमुक्त हैं, किन्तु मैकॉलिफ ने इसी आधार पर भेद की दीवार खड़ी कर दी।

मैकॉलिफ ने अपनी विभाजक विषैली व्याख्या में कहा कि सिख केवल पंथ या जाति मात्र नहीं है, यह एक नूतन राष्ट्र है, जिसकी रचना गुरु गोविन्दसिंह ने की थी। Sikhs are not only a religion or nationality, It is a new nation. इस नये राष्ट्र को सदा राज्य करने का दायित्व एवं अधिकार गुरु गोविन्द सिंह ने दिया था। 'राज करेगा खालसा, याकी रहे न कोय।'

गुरु ग्रंथसाहिब की विभेदक व्याख्या

श्री गुरु ग्रंथसाहिब में कम से कम तीस हजार बार राम का नाम एवं लगभग 16 हजार बार कृष्ण एवं समानार्थक नाम आए हैं। गुरु नानक की वाणी है—

जे सुख चाहें रे मना, शरण राम की लेह
कहु नानक थिर कछु नहीं नश्वर मानव देह

पंचम गुरु श्री अर्जुनदेव ने विष्णु सहस्रनाम के समान सहस्रनामा ही लिखा—

अच्युत पारब्रह्म परमेश्वर अन्तर्यामी,
मधुसूदन दामोदर स्वामी मुरली मनोहर हर रंगा।

गुरु ग्रंथसाहिब में सम्पूर्ण कृष्णावतार की कथा आई है—

आपे गोपी कान्ह है प्यारा जन आपे गौ चराहा
आपे साँवल सुन्दरा प्यारा आपे वन्स बजाहा
कुवलियापीड़ आप मर चिन्दा प्यारा
कर बालक रूप पचाहा आप अखाड़ा पयिन्दा प्यारा
कर बेखे आप सो चाहा कर बालक रूप उपयिन्दा प्यारा

चाणूर कंस भेस माराठा। (पन्ना 606)

मैकॉलिफ ने लिखा कि सिखों का राम निराकार राम है। उसने विकृत व्याख्या की कि रघुनाथ का अर्थ फकीर की रगों का नाथ—रगनाथ है। कृष्ण कान्ह गोपाल गोविन्द की भी मनमानी ऊटपटांग व्याख्यायें कर दीं। इस प्रकार सन्तवाणी के समन्वय ग्रंथ को विभाजन-विभेदन ग्रंथ बनाने का दुष्प्रयास हुआ।

दशम ग्रंथ के पाठ पर प्रतिबंध

मैकॉलिफ ने लिखा कि गुरु ग्रंथसाहिब तो सिखों का धर्मग्रंथ है किन्तु गुरु गोविन्दसिंह द्वारा रचित दशम ग्रंथ तो मात्र काव्यग्रंथ है। अतः किसी गुरुद्वारे में दशम ग्रंथ का पाठ नहीं होना चाहिए। इस प्रकार एक विदेशी षड्यन्त्रकारी कूटनीतिज्ञ ने खालसा पंथ के संस्थापक की वाणी का ही गला बड़ी चालाकी से घोंट डाला। यह इसीलिए किया गया क्योंकि दशम ग्रंथ गुरु गोविन्दसिंह की निजी हिन्दू आस्थाओं का बड़ा सुन्दर एवं सुविस्तृत दर्पण है। उसका पाठ चलते रहने से सिखों को हिन्दू समाज से विलग कर पाना असम्भव होता।

गोविन्द रामायण—चण्डी चरित्र

गुरु गोविन्दसिंह ने अपने 62 शिष्यों को संस्कृत एवं वेद शास्त्र पढ़ने हेतु काशी भेजा था। उनके दरबार में भी अनेक ब्रजभाषा के उत्तम कवि विद्यमान थे। उनके काशी में संस्कृताभ्यासी शिष्यों को निर्मला कहा जाता था। आज तक निर्मला सिख संस्कृत विद्वत्ता की परम्परा को जीवित किए हुए हैं। गुरु गोविन्दसिंह ने तुलसी के रामचरितमानस से प्रेरणा प्राप्त कर स्वयं पूरी रामकथा 'गोविन्द रामायण' ब्रजभाषा में लिखी—

रामकथा जुग जुग अटल, सब कोऊ भाखत नेत
स्वर्गवास रघुवर कियो, खागली पुरी समेत।
जो यह कथा सुने अरु गावे, दुख दोष तहँ निकट न आवै
राम भगत को यह गति होई, आधि व्याधि छू सकैं न कोई।।

अकाली दल की रचना में मैकॉलिफ के विषैले विचार डंक ने ही काम किया। अतः गोविन्द रामायण का पाठ तो बन्द हो ही गया। एक गुरुद्वारे में एक उपदेशक महाराज दशरथ का उपहास कर बोल रहा था—'देखिए, गुरु गोविन्दसिंह के चार साहबजादे कुर्बान हो गये—दो युद्ध में मारे गए और दो दीवारों में जिन्दा चुने गए किन्तु उन्होंने उफ तक नहीं किया किन्तु राजा दशरथ का प्राण अपने बेटे के वनवास मात्र से ही निकल गया। राजा दशरथ दशमेश गुरु के चरणों की धूल बराबर भी नहीं हैं।' मैंने अपने व्याख्यान में कहा कि 'देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यही है कि हम अपने गुरुओं एवं पूर्वजों की श्रद्धा का उपहास करने लगे हैं। खालसा पंथ के संस्थापक श्री गुरु गोविन्दसिंह ने महाराजा दशरथ के स्वर्गवास का

जो चित्र खींचा है वह कितना भव्य एवं श्रद्धापूरित है—

प्राण गवन नृपवर करयो, प्रण नहि त्यागा जाय
देन कहे जो वर हुते, तन युत दिये चुकाय।।

अर्थात् राजा दशरथ ने प्राण त्याग दिया पर प्रण नहीं त्याग सकते थे। कैकेयी को जो दो वर देने का वचन उन्होंने दिया था उसे ब्याज में अपना तन देकर भी चुका दिया।

गुरु गोविन्दसिंह ने अपनी जीवनी विचित्र नाटक में लिखा कि उन्होंने हेम कुण्ड पर्वत पर बदरीनाथ धाम के मार्ग में काली की आराधना की थी तथा वरदान स्वरूप उसी से शस्त्र प्राप्त किए।

वे बार-बार प्रार्थना करते—

देहू शिवा वर मोहि इहै, शुभ कर्मन ते कबहूँ न टरूं।
न डरूं अरि सों जब जाय लरौं निश्चय कर आपनी जीत करूं।।

चण्डी चरित्र में गुरु गोविन्दसिंह की सिंहवाहिनी दुर्गामाता की वंदना बड़ी हृदयस्पर्शी है।

नमो उग्रदन्ती अनन्ती सवैया। नमो जोग जोगेश्वरी जोग मैया।।
नमो केहरी वाहिनी शत्रु हन्ती। नमो शारदा ब्रह्म विद्या पढन्ती।।
नमो ऋद्धिन्दा सिद्धिदा बुद्धि देनी। नमो काल के काल की काल छनी।।
नमो ज्योति ज्वाला तुम्हें वेद गावें। सुरासुर ऋषीश्वर नहीं भेद पावें।।

श्रीमद्‌भागवत एवं श्रीकृष्ण चरित्र

गुरु गोविन्दसिंह ने दशम ग्रंथ में श्रीमद्‌भागवत के अनुसार सभी अवतारों की गाथायें सुन्दर ब्रजभाषा काव्य में लिखी है। भगवान श्रीकृष्ण की मुरली महिमा पर उन्होंने इतना सुन्दर लिखा है कि महाकवि सूरदास की रचनाओं का आनन्द मिलने लगता है—

रूखन ते रस चूवन लागा, झरें झरना गिरि ते सुखदायी
घास चूगें न मृगा बन के, खग रीझ रहे धुनि सुनि पाई
देव गंधार बिलावल सारंग, की धुनि के जिह तान बसाई
देव सभै मिलि देखन कौतुक, ज्यौं मुरली नन्दलाल बजाई।।

खालसा पंथ का उद्देश्य

गुरु गोविन्दसिंह ने चैत्र के नवरात्र में नैनादेवी नामक शक्तिपीठ में यज्ञ रचाया तथा अन्तिम दिन देवी के बलिदान हेतु पंचप्यारों का आह्वान किया। जिन

पाँच वीरों ने बलिदान हेतु आत्मसमर्पण किया, वे केवल पंजाबी या सिख ही नहीं थे, वे भारत के विभिन्न प्रान्तों के विभिन्न वर्णों के हिन्दू वीर ही थे।

1. भाई दयाराम लाहौर	(उत्तर भारत)	खत्री (क्षत्रिय)
2. भाई धर्मदास दिल्ली	(उत्तर भारत)	छिम्बा (छीपी)
3. भाई मोहकम चन्द	द्वारिका (गुजरात, पश्चिमी भारत)	नाई
4. भाई साहब चन्द	बिदुरपुरी (दक्षिण भारत)	जाट
5. भाई हिम्मत राय	जगन्नाथपुरी (उड़ीसा, पूर्वी भारत)	झीर (झींवर)

गुरु गोविन्दसिंह ने आह्वान किया—

जे आरज तू खालस होवें।
हंस हंस सीस धरम हित खोवें।।

(यदि तू खालस (शुद्ध) आर्य है तो हंस-हंस कर अपना शीश धर्महित बलिदान कर।)

इन युद्ध आर्य बलिदानी वीरों का सैन्य संगठन (खालसा पंथ) का उद्देश्य बताते हुए वे कहते हैं—

सकल जगत में खालसा पंथ गाजे, जगे धर्म हिन्दू, सकल भंड भाजे। निश्चय ही खालसा पंथ की स्थापना हिन्दू धर्म पर छाए हुए समस्त अत्याचार के काले बादलों को निरस्त कर हिन्दू धर्म की पुनर्जाग्रति हेतु ही की गई थी।

गुरुओं के हिन्दू संस्कार

सभी गुरु हिन्दू की सन्तान एवं हिन्दू श्रद्धापूरित श्रेष्ठतम हिन्दू सन्त थे। गुरु तेग बहादुर ने काश्मीर के ब्राह्मणों के तिलक एवं यज्ञोपवीत की रक्षा हेतु ही दिल्ली के चाँदनी चौक में अपना बलिदान दिया। इस बलिदान की प्रेरणा उन्हें अपने 9 वर्ष के सुपुत्र के इन शब्दों से ही मिली थी। यदि 'धर्म रक्षा के लिए किसी महापुरुष के बलिदान की आवश्यकता है तो आपसे बड़ा महापुरुष कौन है?' गुरु गोविन्दसिंह ने स्वयं अपने पूज्य पिताश्री के बलिदान का बड़ा गौरवपूर्ण वर्णन किया है—

तिलक जंजु राखा प्रभु ताका, कीन्हो बड़ा कलू महं साका।
धर्म हेतु एती जिन करी, सीस दिया पर सी न उचरी।।

गुरु तेगबहादुर के बलिदान से पूर्व भाई मतिदास एवं दयालदास नामक ब्राह्मणों ने बलिदान दिया।

सभी सिख गुरुओं के यज्ञोपवीत, विवाह संस्कार, अग्नि संस्कार वैदिक हिन्दू पद्धति से ही हुए। गुरु गद्दी पर बैठते समय सभी गुरुओं को हिन्दू परम्परा से तिलक लगाया गया तथा नारियल भेंट किया गया।

गुरु नानकदेव ने मृत्यु से पूर्व स्वयं गोबर लीप कर उस पर बिस्तर लगाया। धर्मपत्नी के पूछने पर उन्होंने बताया कि 'वे अकाल पुरुष के घर जाने की तैयारी कर रहे हैं।' धर्मपत्नी ने कहा—'कल आपके पिताजी का श्राद्ध है।' तो गुरुजी ने उत्तर दिया—'अच्छा, हम दो दिन बाद जायेंगे।' अपने पूज्य पिताजी का श्राद्ध पूर्ण कर दो दिन बाद वे ज्योति जोत समा गए। अमृतसर नगर के निर्माता चौथे गुरु श्री गुरुरामदास ने कहा कि 'मेरी मृत्यु पर केशोदास पंडित को बुलाकर अंतिम संस्कार करवायें तथा मेरी अस्थियाँ हरिद्वार में प्रवाहित की जायें।' (रामकली शब्द महला-4) पितृ तर्पण की महत्ता में गुरु नानकदेव लिखते हैं—

आप न देहिं चुल्लू भर पानी निन्दहि तेहि जे गंगा आनी।।

(नास्तिक लोग अपने मृतक पितरों को चुल्लू भर पानी भी नहीं देते और निन्दा उस राजर्षि भगीरथ की करते हैं जो अपने पितरों के उद्धार हेतु गंगा को स्वर्ग से खींच कर भूतल पर ले आया।) 'आज तक गुरु नानकदेव, गुरु अंगददेव, गुरु अमरदास, गुरु अर्जुनदेव के श्राद्ध किये जाते हैं।'

गुरु नानकदेव द्वारा भगवान वासुदेव श्रीकृष्ण स्मृति

गुरु नानक ने स्पष्ट शब्दों में वासुदेव पुत्र वसुदेव कृष्ण की देवदेव कह कर स्तुति गाई है—

एक देवा कृष्ण देवा, देव देवा आत्मा
आत्मा श्री वासुदेवा, जे कोई जाने भेव
नानक ताका दास है, खोंई निरंजन देवा।

सिख-गुरुओं ने मन्दिर निर्माण किये गुरुद्वारे नहीं

मन्दिर शब्द देव-मन्दिर के लिए पर्यायवाची बन गया है। अतः गुरुओं ने प्रभु महिमा में हरमन्दिर, हरिमन्दिर (विष्णु मन्दिर), स्वर्ण मन्दिर स्थापित किये। स्वयं अपनी निजी प्रतिष्ठा के लिए गुरुद्वारे स्थापित नहीं किये। अकाली दल ने लॉर्ड मैकॉलिफ के विषैले विचार डंक से भ्रमित हो सिख समाज को अपने मूल मातृसमाज से अलग सिद्ध करने हेतु अपने उपासना गृहों को मन्दिर के स्थान पर गुरुद्वारा कहना प्रारम्भ किया तथा गुरुद्वारा आन्दोलन चलाया। महामना मालवीयजी ने कहा था कि सिख गुरुओं ने हिन्दू समाज की रक्षा के लिए जितने बलिदान दिये हैं उसका ऋण चुकाने हेतु पंजाब में प्रत्येक हिन्दू को अपना एक पुत्र केशधारी सिख बनाना चाहिए। परिणामस्वरूप प्रायः प्रत्येक घर में केशधारी सिख एवं गैर केशधारी (मौने) हिन्दू भाई प्रेम से रहते थे। पंजाब में उपासना गृहों को मन्दिर या धर्मशाला कहा जाता था। वहाँ गीता-रामायण एवं गुरु ग्रंथसाहब का साथ-साथ पाठ होता था। जनता देव दर्शन भी करती थी तथा ग्रंथसाहब दर्शन भी करती थी। गुरुद्वारा

आन्दोलन द्वारा अंग्रेज सरकार से यह घोषणा करवा ली गई कि जिस किसी भवन में गुरु ग्रंथसाहब हो वह गुरुद्वारा माना जावे तथा शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के अधीन हो जावे। दिल्ली में एक हिन्दूभक्त ने अपना बंगला गुरु कृष्ण राम को भेंट किया था। उसे गुरुद्वारा बंगला साहब कहा जाने लगा। जहाँ-जहाँ मन्दिरों एवं धर्मशालाओं में गुरु ग्रंथसाहब का पाठ या प्रकाश होता था वहाँ-वहाँ जबर्दस्ती आक्रमण-अतिक्रमण कर पंडितों-महन्तों को निरस्त कर या हताहत कर, रक्तपात कर आन्दोलन भड़का कर गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के कब्जे में कर लिया गया। तब से ॐ और राम के उपासक गैर केशधारी हिन्दुओं को ॐ और राम के उपासक केशधारी हिन्दुओं (सिखों) के उपासना-गृह भी बंट गए तथा हृदय भी बंटने लगे।

गुरुओं के वेश-परिवेश एवं स्वरूप बदले गये

सभी सिख गुरु भारत के अन्य आध्यात्मिक सन्तों के समान सरल साधु अंश वाले थे। गुरु नानकदेव सूर्यवंश की परम्परा में हुए थे। बहुत काल बाद लव के वंशजों में से एक राजा देवराय ने (अयोध्या से) राजसूय यज्ञ हेतु कुश के वंशजों में से एक राजा जगतराय (बाराबंकी) पर आक्रमण किया। जगतराय ने कहा कि रघुवंश में राम और भरत परस्पर एक दूसरे के लिए राज्य त्याग देते हैं, भाई-भाई से राज्य के लिए कभी लड़ता नहीं। अतः जगतराय देवराय के लिए राज्य छोड़कर काशी चले गये। वहाँ वेद पढ़कर वेदज्ञ बनकर जब पुनः एक बार अयोध्या लौटे तो सगोत्र भाई देवराय ने उन्हें राज्य लौटाना चाहा। किन्तु वे वेद विद्या में ही लगे रहे तथा राज्य स्वीकार नहीं किया। वे वेद पढ़ने के कारण वेदी कहलाए। उसी वेदी परम्परा के सूर्यवंशी क्षत्रिय कालूराम वेदी के घर नानकदेव का जन्म हुआ था। गुरु नानक से लेकर गुरु तेग बहादुर तक लम्बे केश-दाढ़ी रखने का नियम नहीं था। गुरु नानक से लेकर गुरु तेग बहादुर तक सिर पर लम्बे केश नहीं रखते थे। दाढ़ी भी लम्बी रखने का बन्धन नहीं था। जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदासजी के कई चित्र दाढ़ी सहित एवं कई दाढ़ी रहित भी मिलते हैं, उसी प्रकार गुरु नानकदेव के प्राचीन चित्रों में सिर पर साधुओं की टोपी है, पगड़ी बिल्कुल नहीं तथा दाढ़ी भी विशेष लम्बी नहीं। करतारपुर (निकट जालंधर) में गुरु नानकदेव की एक प्राचीन प्रस्तरमूर्ति है, जिसमें सिर पर टोपी, हलकी दाढ़ी एवं माथे पर तिलक है। शेष सिख गुरुओं के भी केश-दाढ़ी-पगड़ी नहीं थी। किन्तु मैकॉलिफ के विभेदक विष ने सभी गुरुओं के रूप-स्वरूप, वेश-परिवेश में अन्तर, सभी के दाढ़ी केश एवं पगड़ी वाले काल्पनिक चित्र प्रसारित कर दिये ताकि सिख सन्त अन्य हिन्दू सन्तों से पृथक् दर्शाये जा सकें। अंग्रेज की कूटनीति ने न केवल जन-जन का हृदय बांटा वरन् परम तत्त्व में सारे सन्त एक हो जाते हैं उन परम तपस्वी साधक-सन्तों को भी बांट दिया। राजनीति की कुटिल कूटनी ने अध्यात्म साधना की सुरसरी को विषाक्त बना दिया।

समस्त हिन्दू धर्म सम्प्रदायों का समान दार्शनिक आधार

आज के राजनीतिक स्वार्थों में अन्धे नेता यह भूल जाते हैं कि हिन्दू धर्म के सभी सम्प्रदायों (सनातन धर्म, आर्य समाज, जैन समाज, सिख समाज) के समान दार्शनिक आधार हैं—

1. आत्मा की अमरता का सिद्धान्त—

गुरु तेगबहादुर की वाणी है—

साधो यह तन मिथ्या जानो
इहं भीतर जो राम बसत है ताको सांचा मानो।

गुरु नानक की वाणी है—

आतम महिं राम, राम महिं आतम
चीन्हसि गुरु विचारा।

2. जीवन का अंतिम लक्ष्य मोक्ष—

गुरु नानक की वाणी है—

गुरु किरपा जे नर पै कीन्हीं बिन यह जुगत पिछानी
नानक लीन भयो गोबिन्द सों ज्यो पानी संग पानी।

3. (जब तक मोक्ष नहीं मिला तब तक) पुनर्जन्म—

गुरुवाणी देखें—

बहुत जन्म बिछुड़े थे माधव यह जन्म तिहारे लेखे
लाख सीस तैने किए यमराजों की भेंट
एक सीस तैं न दियो नारायण के हेत

4. पुनर्जन्म से संयुक्त कर्म सिद्धान्त—

गुरु नानक की वाणी है—

चंगियाइयाँ बुरआइयाँ वाचे धर्म हदूर
कर्मी आपो आपणी के नेड़े के दूर।।

(धर्म के दरबार में मनुष्य की अच्छाई-बुराई ही परखी जाएगी। अपने-अपने कर्म के आधार पर ही कोई जीव परमेश्वर के निकट या दूर हो सकता है।)

इतिहास, संस्कृति एवं पूर्व भाषा पूज्य प्रतीक—सभी एक हैं

सिख समाज का इतिहास हिन्दू से भिन्न नहीं। पर्व उत्सव संक्रांति, पूर्णिमा, वैशाखी, होली, दीवाली भिन्न नहीं। पंजाबी भाषा प्रचलित हिन्दी की अपेक्षा वैदिक संस्कृत के अधिक निकट है।

रामेण बलमम् कृतम् (संस्कृत)	=	राम ने बला कीता (पंजाबी)
व्यासेन आख्यातम् (संस्कृत)	=	व्यास ने आख्या (पंजाबी)
नवरात्रि पर्वे कन्यका पूज्यते (संस्कृत)	=	नौराते पर्व ते कंजकां पुजीदियां हन (पंजाबी)
जाज्वल्यमान तप्त अग्नि (संस्कृत)	=	जलदी तत्ती अग्ग (पंजाबी)

सिख गुरुओं ने भी गोमाता को पवित्र प्रतीक मानकर इसकी रक्षा का व्रत लिया।

यही देह आज्ञा तुर्क गहिं खणऊ, गऊ घात का दोष जग सो मिटाऊं।
यही आस पूरण कंरो तू हमारी, छूटै कष्ट गैयन, मिटै खेद भारी।।

(गुरु गोविन्द सिंह की प्रार्थना)

राष्ट्रहित में यथार्थवादी दृष्टिकोण रखें

भारत की जनता एवं प्रशासन का कर्तव्य है कि राष्ट्र की अखण्डता के हित में भावुकता या तुष्टीकरण की नीति त्याग कर यथार्थवादी राष्ट्र हितैषी दृष्टिकोण रखे। उग्रवादी आन्दोलनकारी जानते हैं कि भारत सरकार अल्पसंख्यकों का तुष्टीकरण करती है तथा उग्र हिंसक आन्दोलन के सामने घुटने टेक देती है। इसीलिए अकाली दल वाले समस्त गुरुद्वारों के प्रचार-प्रसार द्वारा सारे सिख समाज को अल्पसंख्यक (माइनोरिटी) हिन्दू समाज से अलग-थलग होने का कुविचार फैलाते रहते हैं। दूसरी ओर प्रशासन से टक्कर लेने हेतु एक लाख बलिदानी वीरों का जंगी सैन्यदल तैयार कर रहे हैं।

समस्या का निवारण

सिख संप्रदाय के जनगण को इतिहास के तथ्यों के आधार पर शिक्षित किया जाए। उन्हें बताया जाए कि वे अपने गुरुओं के दिव्य राष्ट्र मंगलकारी पथ को छोड़कर विषैले विदेशी प्रचार से भ्रमित न हों, गुरुवाणी की तुलना में वे मैकॉलिफ वाणी को त्याज्य मानकर कूड़े में फेंक देवें। वे सिख हित एवं संप्रदाय हित से ऊपर राष्ट्रहित को मानें। पंजाब के सभी स्कूलों-कॉलेजों में हिन्दी-संस्कृत की शिक्षा तथा राष्ट्रगीत वन्देमातरम् का अधिकाधिक प्रचार किया जाए। दशम ग्रंथ के चुने हुए अंशों को लाखों की संख्या में छपवा कर वितरित किया जाए ताकि शिष्य अपने पंथ संस्थापक की मूलवाणी से महान् सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय प्रेरणा प्राप्त कर सकें। गुरु गोविन्दसिंह के शब्द सबका मार्गदर्शन करें—

भारत माँ के सीस पर वार दिये सुत चार
चार मुए तो क्या भया जीवित कई हजार।

भारत की सांस्कृतिक एकता

भारत का स्वरूप

संस्कृति का महत्त्व

वैदिक राष्ट्रवाद

वैदिक ऐक्य मंत्र

रामायण

महाभारत

पुराण

काव्य

जातियों का समन्वय

उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ

तीर्थों द्वारा ऐक्य संवर्धन

संस्कृत द्वारा सांस्कृतिक ऐक्य

आध्यात्मिक मूल्य

समान नैतिक मूल्य

समान सुख-दुःख की अनुभूति

जीवन दृष्टि

धर्म, समन्वय एवं सद्भाव

भाषाओं की विविधता में भाव की एकता

प्रदेशों की अनेकता में देश की एकता

आधुनिक राष्ट्रनायकों का योगदान

डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार हिन्दू जाति एक सांस्कृतिक इकाई के रूप में रही है, जिसका एक ही इतिहास, साहित्य और सभ्यता है।

पाश्चात्य विद्वान् विन्सेन्ट स्मिथ ने भी लगभग इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं। उनका कहना है—'निःसंदेह भारत में एक आधारभूत एकता है। यह एकता भौगोलिक पृथक्ता या राजनैतिक श्रेष्ठता से प्राप्त होने वाली एकता से कहीं गहरी है। यह एकता असंख्य परस्पर विरोधी रक्त, रंग, भाषा, पोशाक, रीति-रिवाज तथा साम्प्रदायिक घेरे से बहुत ऊपर उठी हुई है।

राधाकृष्णन के अनुसार—'हिन्दू धर्म नैतिक जीवन पर बल देता है और उन सभी वर्गों में भ्रातृत्व स्थापित करना चाहता है जो नैतिक नियम अथवा धर्म द्वारा निर्धारित मार्ग पर चलना अपना कर्तव्य समझते हैं। हिन्दू धर्म कोई सम्प्रदाय नहीं प्रत्युत उन सभी का एक महान् भ्रातृ संघ है, जो सत्य को मानते हैं और निष्ठापूर्वक सत्य की खोज करते हैं।'

भारत के भूतपूर्व विदेशमंत्री प्रसिद्ध न्यायविद् स्वर्गीय मुहम्मद करीम छागला ने भी हिन्दू धर्म की व्याख्या करते हुए कहा था, 'तुम चाहे आस्तिक हो, चाहे नास्तिक हो, चाहे सन्देहवादी हो। फिर भी हिन्दू हो। वास्तव में हिन्दू कोई रिलिजन नहीं। यह तो एक जीवन विधि है, विचार पद्धति है। फ्रांसीसी लोग अपनी तर्क-बुद्धि और सूक्ष्म विश्लेषण के अन्तर्गत समस्त भारतीयों को चाहे वे किसी भी जाति या सम्प्रदाय के क्यों न हों, हिन्दू ही कहते हैं। मैं समझता हूं कि जो देश में रहते हैं, इसे अपना घर मानते हैं, उनके लिये यही सम्बोधन है। सच बात तो यह है कि हम सब हिन्दू हैं, भले ही हम भिन्न-भिन्न धर्मों, मजहबों या सम्प्रदायों को मानने वाले हों। मैं हिन्दूं हूं क्योंकि मैं अपने पूर्वजों को आर्यों की सन्तान मानता हूं और उस संस्कृति तथा विचारधारा का पोषक हूं, जिसे वे अपनी भावी पीढ़ियों के लिये विरासत में छोड़ गये हैं। इस व्याख्या से जैन, सिक्ख, बौद्ध आदि सम्प्रदायों के अनुयायियों को ही नहीं बल्कि समझदार, उदारचेता ईसाई और मुसलमान भी अपने को हिन्दू कहने में संकोच नहीं करेंगे।

डॉ. एनीबेसेन्ट कहती हैं—यह समझना भूल नहीं कि हिन्दुत्व के बिना भारत का कोई भविष्य नहीं। हिन्दुत्व ही वह जमीन है जिसमें भारत की जड़ें गहराई तक पहुंची हुई है और उसे उस जमीन से अलग कर दिया जाये तो वह कटे पेड़ की तरह मुरझा जायेगा। भारत में अनेक जातियां और धर्म हैं, परन्तु उनमें से किसी का भी भारत के अतीत के साथ सम्बन्ध नहीं है और न ही उनके कारण भारत की राष्ट्रीयता कायम है। यदि भारत ने हिन्दुत्व की रक्षा नहीं की तो फिर कौन बचायेगा उसे? भारत की रक्षा भारत ही कर सकता है। भारत और हिन्दुत्व में कोई अन्तर नहीं, वे समानार्थक हैं।